वाणी-सरोवर

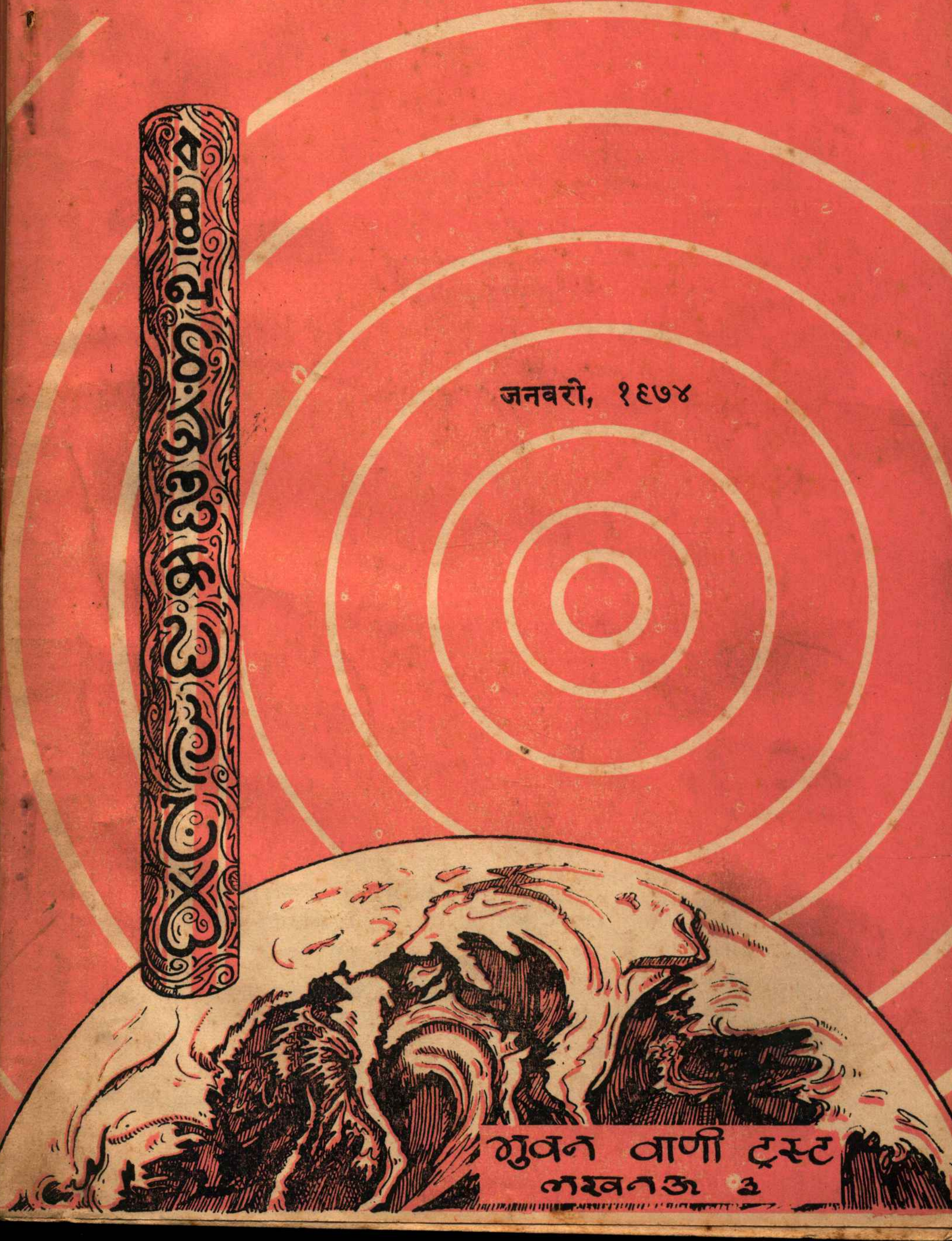

जनवरी, १९७४

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ ३

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—५ जनवरी, १९७४ अंक—१

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रि. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्तन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिळ—डॉ०पी०जयरामन,हिन्दी आफ़िसर रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया
वी. नटराजन, एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पारसी—सुश्री नाज़ू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू. (फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सिं.स.

हिन्दी—कविराज कृष्णकुमार अवस्थी, आयुर्वेदाचार्य, बी. आई. एम. एस.

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय	... ...	३-७
४	नववर्ष की बधाई	... ...	८
५	(फ़ारसी)	सिर्रे अक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए., पीएच्.डी.	२०१-२०८
६	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर, भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	२०९-२१६
७	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	२०९-२१६
८	(तमिळ)	तिरुक्कुरळ्—सानु०लिप्य०—श्री डॉ० जयरामन, सुश्री गोमती अय्यर; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	१८५-१९२
९	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	५७-६४
१०	(अरबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादँ सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	१६९-१७६
११	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	१८५-१९२
१२	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे, पूना एम.ए., अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१४५-१५२
१३	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	१२१-१२८
१४	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे, पूना, डॉ. दीनेश भट्ट, बंबई	११३-१२०
१५	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल', एम.ए., पी.एच्.डी.	१०५-११२
१६	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम.ए. सा०र०	१०५-११२
१७	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.	८९-९६
१८	(नेपाली)	भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	८९-९६
१९	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	९७-१०४
२०	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	६५-७२
२१	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) श्री जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., साहित्यरत्न	६५-७२

सम्पादकीय

रामचरितमानस का संस्कृत-रूपान्तर क्यों ?

जनवरी सन् १९७३ से, भुवन वाणी ट्रस्ट 'रामचरितमानस' का संस्कृत पद्यानुवाद प्रकाशित कर रहा है। इस संस्कृत-रूपान्तर में बायीं ओर रामचरितमानस का मूल पाठ और दाहिनी ओर पंक्ति-अनुपंक्ति जवाबी अति ललित संस्कृत पद्यानुवाद दिया गया है। संस्कृत-ग्रंथ होने के कारण इतर-हिन्दी प्रान्तों और विदेशों तक में यह अद्‌भुत प्रयास लोकप्रिय होगा, और इस प्रकार अहिन्दी भाषी संस्कृतज्ञ जनों को भी रामचरितमानस जैसे भक्तिमय दर्शन-काव्य के रसास्वादन का सुअवर प्राप्त होगा।

देवनागरी लिपि में 'एकार' और 'ओकार' की मात्राओं के ह्रस्व और दीर्घ रूपों को पृथक् व्यक्त करने का चलन नहीं है; यद्यपि हिन्दी बोलने में यह भेद सदैव विद्यमान है। अवधी, तथा उर्दू से प्रभावित खड़ी बोली में (इज़ाफ़त के लिए) 'एकार' और 'ओकार' के ह्रस्व रूप बोलने में बराबर प्रयुक्त होने के बावजूद, लिखावट में दीर्घ उच्चारण के समान ही लिखे जाते हैं। उदाहरण के लिए रामायण की एक चौपाई नीचे उद्धृत है :—

"सोँइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेँहुँ सो न राम हियँ हेरी॥"

उपर्युक्त उद्धरण में सोँ और सो तथा नेँ और हे में ओकार एवं एकार की मात्राएँ क्रमशः ह्रस्व और दीर्घ हैं। इन ह्रस्व और दीर्घ मात्राओं को ोँ ो ेँ े इस प्रकार भुवन वाणी ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित किये जा रहे 'संस्कृत पद्यानुवाद सहित रामचरितमानस' के मूल हिन्दी पाठ में मुद्रित किया जा रहा है। अवधी पाठ से अनभिज्ञ पाठकों को यदि यह भेद सुलभ न हो तो दोहा-चौपाई का शुद्ध पाठ उनके लिए सम्भव नहीं। ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व पढ़ने पर मात्राएँ घट-बढ़ कर छंद को अशुद्ध, लयहीन और रसहीन कर देंगी।

पाठकों को ज्ञातव्य है कि दक्षिणी भाषाओं—तमिळ, तेँलुगु, कन्नड और मलयाळम में ह्रस्व और दीर्घ एकार तथा ओकार को पृथक् रूप में लिखने का चलन है। भुवन वाणी ट्रस्ट ने देवनागरी लिपि में लिप्यन्तरित भारत की अनेक भाषाओं के प्रकाशनों में ह्रस्व और दीर्घ एकार तथा ओकार को पृथक् व्यक्त किया है। इससे शुद्ध पाठ के लिए मार्ग प्रशस्त

हुआ है; देवनागरी लिपि की क्षमता में अभिवृद्धि हुई है। इन नवीन मात्राओं के सन्निवेश के अलावा, मानस के मूल पाठ में कामा, हैफ़िन, डैश, सामासिक शब्दों को मिला कर लिखने-जैसी विधि—इन विशेषताओं के कारण यह हमारा रामायण ग्रंथ हिन्दी और अहिन्दीभाषियों के लिए समान रूप से सरल और सुबोध सिद्ध होगा।

एकार और ओकार की ह्रस्व तथा दीर्घ मात्राओं को पृथक् लिखने के लिए हिन्दी में कई 'प्रकार' अपनाये गये। परंतु भुवन वाणी ट्रस्ट की मात्राओं के ऊपर-इंगित रूप लेखन और मुद्रण में अपेक्षाकृत सरल और निर्दोष हैं। अखिल भारतीय काशिराज न्यास द्वारा प्रकाशित रामचरितमानस में प्रयुक्त इन रूपों को ही ट्रस्ट ने ग्रहण किया है। देवनागरी लिपि को उनकी यह सामयिक देन है। तदर्थ भुवन वाणी ट्रस्ट, काशिराज न्यास तथा उसके मंत्री श्रीरमेशचन्द्र देव का अत्यन्त आभारी है। यह भी उल्लेखनीय है कि विक्रम परिषद काशी और आचार्य विनोबा भावे जी भी इन्हीं मात्रा-चिह्नों को प्रयोग में ला रहे हैं।

यह तो रही मानस के मूल पाठ को देने की हमारी विधि। जहाँ तक जवाबी संस्कृत पद्यानुवाद का सम्बन्ध है, वह पंक्ति-अनुपंक्ति, भाव को पूरी तौर पर समेटनेवाला, फ़ालतू और भरती के शब्दों से नितांत परे, सरल और ललित, विद्वान् और जनसाधारण—सब को समान रूप से आनन्द देनेवाला, और अद्‌भुत रूप से सफल सिद्ध हुआ है। संस्कृत भाषा की क्षमता किसको ज्ञात नहीं कि अन्य भाषाओं के भाव-विस्तार में शब्दों की विपुलता को थोड़े से थोड़े शब्दों में प्रकट करने में, वह कितनी अधिक समर्थ है। ऐसी स्थिति में हिन्दी मूल की एक पंक्ति का जवाबी एक पंक्ति में ही अविकल संस्कृत अनुवाद, अर्थात् आवश्यकता से अधिक शब्दों को लाने के बावजूद भाव की जैसी की तैसी सुरक्षा, फ़ालतू शब्दों की किञ्चित् भी पैठ के दोष का अभाव, और साथ ही भाषा-सौन्दर्य और काव्य-लालित्य की प्रचुरता—इसका सारा श्रेय विद्वान् अनुवादक श्रीजनार्दन गंगाधर रटाटे, एम० ए० की काव्य-प्रवीणता, विपुल शब्द भण्डार पर उनका अधिकार, और उनमें सहज दर्शनीय सामयिक प्रत्युत्पन्नमति को ही है। अनेक पाठकों ने अनुवाद की भूरि-भूरि सराहना की है; अरुचि व्यक्त करनेवाला तो कोई मिला नहीं।

किन्तु रामचरितमानस के संस्कृत पद्यानुवाद 'मानस-भारती' सहित हमारे इस प्रकाशन के आरंभ होते ही जहाँ एक ओर उसकी संस्तुति और सराहना हुई है, वहीं एक कुतूहल, कभी वाणी से और कभी मुद्रा से यह भी परिलक्षित हुआ है कि आख़िर 'मानस' के संस्कृत रूपान्तर जैसे आयास की आवश्यकता क्या? संस्कृत तो किसी जनपद की भाषा नहीं; रहे संस्कृत

के विद्वान्, सो उनके लिए वाल्मीकीय एवं अध्यात्म रामायण जैसे पाण्डित्य-पूर्ण ग्रंथ सुलभ हैं; इच्छा होने पर मानस का सर्वसुलभ हिन्दी पाठ भी वे कर सकते हैं; फिर इस भगीरथ श्रम की ज़रूरत क्या ? हमारे इस प्रकाशन के प्रति पूर्ण सम्मान होते हुए भी यह प्रश्न कभी-कभी सामने आया है।

सुतरां, उपर्युक्त शंका के निवारण के लिए, भावुक पाठकों को ज्ञातव्य है कि संस्कृत भाषा भले ही किसी जनपद की बोलचाल की भाषा न हो, किन्तु देश क्या विदेशों तक में संस्कृतपाठी विद्वानों की संख्या कम नहीं है; पर्याप्त है। फिर संस्कृत के विद्वानों के अतिरिक्त, संस्कृत में पैठ न रखनेवाले भी विश्वास रखते हैं कि संस्कृत की तुलना में पुष्ट, समस्त ज्ञान-भण्डार और विज्ञानों से गर्भित, सर्वतोमुखी अपार साहित्य-सन्निविष्ट, विश्व में अन्य कोई भाषा नहीं; और भारत की तो सभी भाषाएँ संस्कृत की ही पुत्री-पौत्री हैं। विना संस्कृत-शब्द-भण्डार की सहायता, कोई भारतीय भाषा, भावों को पूर्णरूपेण व्यक्त करने में पंगु है। आम तौर पर यह धारणा है कि दक्षिणी भाषाएँ उत्तरभारत की भाषाओं और उनकी जननी संस्कृत से भिन्न हैं। इस भ्रम के निवारण के लिए निवेदन है कि यह तो ध्रुव सत्य है कि उत्तरभारतीय भाषाएँ संस्कृत के समीप कल थीं और आज हैं। किन्तु यह भी सत्य है कि एक ऐसा युग भी था जब संस्कृत और दक्षिणी भाषाएँ एक ही उद्गम से प्रेरणा ले रही थीं। क्या उत्तर, क्या दक्षिण-भारत की सारी भाषाओं की वर्णमाला पर ध्यान दीजिए। उनके क्रम तो नितांत समान हैं ही, रूपों पर ध्यान देने से प्रकट होगा कि वे सभी मूल में ब्राह्मी लिपि से आविर्भूत हुई हैं। प्रायः सभी भाषाओं में, जिनमें दक्षिणी भाषाएँ भी सम्मिलित हैं, संस्कृत को सम्मान से देवभाषा अथवा ग्रंथभाषा कहा जाता है। ऐसी दशा में देवभाषा संस्कृत में 'रामचरितमानस' जैसे पुनीत ग्रंथ का न होना, अथवा संस्कृत में उसका रूपान्तर देखकर चकित होना—यह कुछ अजीब सा है। इन पंक्तियों के अलावा कुछ निम्न हेतु दृष्टव्य हैं, जिनको सामने रख कर मानस के संस्कृत-रूपान्तर की अनिवार्यता प्रत्यक्ष प्रतीत होती है।

१. सर्वोपरि तथ्य यह है कि पाणिनि की प्रतिभा की बदौलत विश्व में संस्कृत ही को यह गौरव प्राप्त है कि उसमें समय के साथ-साथ परिवर्तन होने की संभावना नहीं। छंद, व्याकरण और शब्द-समूह प्रत्येक युग में समान और सदाबहार हैं। आदिकवि वाल्मीकि-विरचित रामायण, अध्यात्म रामायण, विभिन्न कालों के नाना पुराण, कविशिरोमणि कालिदास के ग्रंथ और आधुनिक रचनाएँ—सब की भाषा विद्वानों

के लिए सदैव समान रूप से बोधगम्य है। इसके विपरीत, अन्य सभी भाषाओं में सौ-दो सौ वर्षों में ही प्राचीन और अर्वाचीन का भेद उत्पन्न हो जाता है। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी की भाषा-शैली को प्रयोग में नहीं लाती। भाषा के क्रमिक इतिहास में उनकी श्रृंखला का वर्णन मात्र ही उनका उपयोग रह जाता है।

तमिळ जैसी समृद्ध भाषा के तिरुक्कुरळ और कम्बन जैसे मान्य ग्रंथों की भाषा को आज का तमिळ विद्वान् भी कठिनाई से समझ पाता है। प्राचीन गुरुमुखी, सिंधी आदि उनके निजी क्षेत्रों में ही दुर्बोध हैं। उनकी अपेक्षा अवधी और ब्रजभाषी उन्हें अधिक सरलता से समझ लेते हैं। बंगला की सुप्रसिद्ध कृत्तिवास रामायण की मूल रचना अब परिमार्जित रूप में ही उपलब्ध है; और उसकी यह परिमार्जित बँगला भी आज की बँगला से अन्तर पर है। राष्ट्रभाषा हिन्दी को लीजिए। समाज में पूज्य रामचरितमानस की भाषा आज के व्यवहार की भाषा नहीं है। सूरसागर, लल्लूलाल का प्रेमसागर, महाकवि भूषण और पुरातन साहित्य पृथ्वीराज रासो के प्रणेता चन्द बरदाई की भाषा—ये सब भाषाई इतिहास में चर्चा मात्र के विषय रह गये हैं; हमारी प्रचलित साहित्यिक अथवा बोलचाल की भाषा में उनकी झलक नहीं।

ऐसी दशा में जिनको रामचरितमानस की अलौकिकता में आस्था है, जो लोग तुलसी के इस मानव-दर्शन को लोक और परलोक की सफलता का साधन मानते हैं, उनके लिए इसका संस्कृत-रूपान्तर मानस को अमरत्व प्रदान करने के समान है। संस्कृत पद्य में आवेष्टित 'मानस' का भावमय काव्य आज और आज से सहस्र वर्ष बाद भी संस्कृतज्ञों के लिए समान रूप से बोधगम्य और सदा-नूतन सिद्ध होगा।

२. रामचरितमानस का सम्मान देश-विदेश सर्वत्र है। अधिकांश भाषाओं में उसके अविकल अथवा भावानुवाद हो चुके हैं। संस्कृत जैसी समृद्ध देवभाषा में ऐसे सद्ग्रंथ का अनुवाद सब प्रकार वाञ्छनीय है। उसका न होना एक बड़ा अभाव है।

३. मानस की रचना के उपरान्त संस्कृतज्ञों के एक वर्ग ने जन-भाषा हिन्दी में होने के नाते इसकी उपेक्षा की थी। आज संस्कृतसागर में मानस की सुरसरिधारा को पहुँचा कर एक नवीन संगम की सृष्टि हो रही है।

४. राष्ट्र के कतिपय अञ्चल, जो हिन्दी की ओर अधिक उन्मुख नहीं हैं, वे भी संस्कृत का परम आदर करते हैं। संस्कृत अनुवाद के

माध्यम से उनको भी 'रामचरितमानस' जैसे अद्वितीय ग्रन्थ का रसास्वादन सुलभ होगा।

५. आज कल हिन्दी की पाठ्य पुस्तकों में संस्कृत-पाठ और व्याकरण के भी कुछ अध्याय सम्मिलित किये जाते हैं। हिन्दीभाषी प्रायः मानस का पारायण करते हैं। उस सहज ज्ञान के सहारे मानस के संस्कृत अनुवाद को पढ़ कर संस्कृत भाषा में विना अधिक आयास प्रवेश उनके लिए सरल होगा।

६. आज सारा देश मानस चतुश्शती समारोह मना रहा है। मानस पाठ, भजन-कीर्तन, प्रवचन, देश-विदेश में इस श्रुति-स्मृति-सार का प्रचार-प्रसार, मानस-मन्दिरों एवं मानस-अध्ययनकेन्द्रों की स्थापना, मानस-प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास को श्रद्धाञ्जलि अथवा उनकी प्रतिमा-स्थापना-जैसे देश-काल-पात्र के अनुसार विविध कार्यक्रमों के आयोजन-समारोह इस चतुश्शती-काल में, सारे देश में मनाया जाना ठीक ही है; किन्तु संत तुलसी के मानस का सुबोध और सुन्दर अनुवाद संस्कृत में 'मानस भारती' के रूप में तुलसी और मानस का एक अद्वितीय स्मारक सिद्ध होगा। उपर्युक्त सारे आयोजनों की अपेक्षा यह संस्कृत-अनुवाद 'मानस चतुश्शती' के लिए एक बेजोड़ भेंट है।

सुतरां, 'भुवन वाणी ट्रस्ट' रामचरितमानस सहित मानस-भारती के शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशन की सफलता के लिए भगवान् से प्रार्थी है और विद्वानों एवं राष्ट्रप्रेमियों के शुभाशीर्वाद का इच्छुक है। इसी उपर्युक्त छठे उद्देश्य को लेकर भुवन वाणी ट्रस्ट 'रामचरितमानस' का ओड़िया संस्करण भी प्रकाशित कर रहा है। इस ओड़िया संस्करण में ओड़िया लिपि में मूल पाठ को देते हुए ओड़िया भाषा में गद्य तथा पद्य, दोनो अनुवाद दिये गये हैं।

नववर्ष की बधाई

असमिया—	राई जलोइ राङाली बिहुर हुभेच्छारे नववरहर ओलगेरे।
अरबी—	अक़द्दिमु अिला समाहृतिकुम् बिद्दुआअिलक़्लबी अलस्सनतिलूजदीदति।
ओड़िया—	नूतन वर्ष सुखरे जाऊँ।
उर्दू—	नया साल मुबारक।
कच्छी—	खास्सो डीन।
कन्नड—	शुभ कोणा वासन बागड़ी।
कश्मीरी—	वधव हाबी छै।
गुजराती—	नूतन वर्ष सफल धराते।
तमिळ—	इङ्गळक्कुम् पुत्ताण्डु नल्ल वाऴ्त्तुक्कळ्।
तेलुगु—	संवत्सरादि कि अभिवन्दनालु।
नेपाली—	ये साल रामरो भयो।
पंजाबी—	नवें साल दी बधाई होवे।
फ़ारसी—	साले नौ मुबारक बाशद।
बंगला—	सुखी नूतन वत्स।
मराठी—	नवीन वर्ष सुखांचे जावो।
मलयाळम—	नववर्षत्तिल् आयुरारोग्यं वरट्टं।
संस्कृत—	नववर्ष मंगलमयमस्तु।
सिन्धी—	न्यू साल जी मुबारक।
हिन्दी—	नववर्ष मंगलमय हो।

['स्वतंत्रभारत', लखनऊ के सौजन्य से]

अनु०—वह जो इस प्रकार जाननेवाला है इस लोक से निवृत्त हो कर, इस अन्नमय आत्मा को संक्रान्त कर, इस प्राणमय आत्मा को संक्रान्त कर, इस मनोमय आत्मा को संक्रान्त कर, इस विज्ञानमय आत्मा को संक्रान्त कर, इस आनन्दमय आत्मा को संक्रान्त कर, इन लोकों में कामान्नी (कामचारी) और कामरूपी हो कर विचरता हुआ यह सामगान करता है—हा ३ वु, हा ३ वु, हा ३ वु। (५)

सि० अ०—अन्नमय कोश को जो अन्न ही है समस्त जगत् के स्थूल शरीर के साथ, प्राणमय कोश को जो प्राण ही है समस्त जगत् के प्राण के साथ, मनोमय कोश को जो मन ही है समस्त जगत् के मन के साथ, वेदानुसारी विज्ञानमय कोश को जो विज्ञान ही है समस्त जगत् के विज्ञान के साथ, और अपने आनन्दमय कोश को जो आनन्द ही है समस्त जगत् के आनन्द के साथ एक जाने, समस्त लोकों को आत्मा जान कर और आत्मा हो कर जगत् में रहे, और [बस !] सारे अन्न उस के अन्न हो जायँगे और वह जो रूप चाहे धारण कर सकेगा। और वह इस मंत्र को जो साक्षात् ब्रह्म है सदा ध्वनिपूर्वक गाये—हा ३ वु, हा ३ वु, हा ३ वु। [५][1]

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्; अहमन्नादो३ऽहमन्नादो३ऽहमन्नादः; अहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृदहꣳ श्लोककृत्। अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य, पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि। यो मा ददाति स इदेव मा३वाः। अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि। अहं विश्वं भुवनमभ्यभवा३म्। सुवर् न ज्योतीः य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥ ६॥

अनु०—मैं अन्न (भोग्य) हूँ, मैं अन्न हूँ, मैं अन्न हूँ; मैं ही अन्नाद (भोक्ता) हूँ, मैं ही अन्नाद हूँ, मैं ही अन्नाद हूँ; मैं ही श्लोककृत् हूँ, मैं ही श्लोककृत् हूँ, मैं ही श्लोककृत् हूँ। मैं ऋत (सम्यक् सृष्टि) में प्रथम जन्मधारी हूँ, देवताओं से पूर्व अमरत्व का केन्द्रस्वरूप। जो [अन्नस्वरूप] मुझे [अन्नार्थियों को] देता है वह इस प्रकार मेरी रक्षा करता है। [जो मुझ अन्नस्वरूप को दान न करता हुआ स्वयं भोगता है उस] अन्न भक्षण

[1] 'सिर्रे अक्बर' में मंत्र ५ और ६ मिला दिये गये हैं। अनुवाद में इन्हें पृथक् कर दिया गया है।

करने वाले को मैं अन्नरूप से भक्षण करता हूँ।[1] मैं इस सम्पूर्ण भुवन को अभिभूत करता हूँ। जो इस प्रकार जानता है उसे सूर्य के समान प्रकाश प्राप्त होता है। ऐसी यह उपनिषद् [ब्रह्मविद्या] है। (६)

सि० अ०—मैं अन्न, मैं अन्न, मैं अन्न; मैं अन्न का भोक्ता, मैं अन्न का भोक्ता, मैं अन्न का भोक्ता; मैं सर्वकर्ता, मैं सर्वकर्ता, मैं सर्वकर्ता; मैं समस्त साकार और निराकार में प्रथम, मैं समस्त देवताओं में प्रथम; मैं समस्त अमरताओं का मूल ! मैं अन्न हूँ। जो कोई बहुत देता है उस ने मुझे उत्तम रीति से दिया; जो कोई मुझे न दे कर अकेले खाता है वह मुझे नहीं खाता, मैं उसे खाता हूँ। मैं समस्त जगत् हूँ, और जिस लोक में सभी बसते हैं मैं उस का अभिभव करता हूँ। जो कोई मुझे इस प्रकार जानता है वह सूर्य के समान तेजस्वी और ज्योतिर्मय हो जाता है। यह गोपनीय रहस्य उपनिषद् है। [६]

॥ इति भृगुवल्ली ॥

शान्तिपाठः

ॐ शं नो मित्रः, शं वरुणः, शं नो भवत्वर्यमा,
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः, शं नो विष्णुरुरुक्रमः।

नमो ब्रह्मणे। नमस् ते वायो ! त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि, ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि। तन् मामवतु, तद् वक्तारमवतु। अवतु माम्, अवतु वक्तारम्।
ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

॥ इति तैत्तिरीयोपनिषत् समाप्ता ॥

१ तुलनीय—ऋग्वेद १०.११७.६; अथर्ववेद ३.२४.५; शतपथब्राह्मण ११.५.६.२; मनुस्मृति ३.८१, ११७-११८; मनुपरिशिष्ट, पृ. ५; गीता ३.१३; श्रीमद्भागवत ७.१४.८।

ॐ

ऐतरेयोपनिषद्

(ऋग्वेदीयैतरेयारण्यक २.४-६)

शान्तिपाठः

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता, मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविरावीर् म एधि । वेदस्य म आणीस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीः । अनेनाधीतेनाहोरात्रान् सन्दधामि । ऋतं वदिष्यामि, सत्यं वदिष्यामि । तन् मामवतु, तद् वक्तारमवतु । अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अनु०—मेरी वाणी मन में स्थित हो, मन वाणी में स्थित हो । तुम मेरे समक्ष आविर्भूत होओ । तुम मेरे प्रति वेद को लाओ । मेरा श्रवण किया हुआ नष्ट न हो । अपने इस अध्ययन के द्वारा मैं रात और दिन को एक कर दूँ । मैं ऋत बोलूँगा, सत्य बोलूँगा । वह मेरी रक्षा करे, वह वक्ता की रक्षा करे, वक्ता की रक्षा करे ।

त्रिविध ताप की शान्ति हो ।

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः खण्डः

ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत् ।[1] नान्यत् किञ्चन मिषत् । स ईक्षत—लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥

---

१ यह वाक्य बृहदारण्यकोपनिषद् १.४.१ में भी आता है ।

अनु०—पहले यह [जगत्] एक मात्र आत्मा ही था, अन्य कुछ भी सक्रिय नहीं था। उस ने ईक्षण (विचार) किया—लोकों की रचना करूँ। (१)

सि० अ०—समस्त सृष्टि के पूर्व आत्मा अकेला था, अन्य कुछ नहीं था। आत्मा ने इच्छा की कि जगत् को करूँ। [१]

स इमाँल् लोकानसृजत—अम्भो, मरीचीर्, मरमापः। अदोऽम्भः, परेण दिवं, द्यौः प्रतिष्ठा; अन्तरिक्षं मरीचयः; पृथिवी मरः; या अधस्तात् ता आपः ॥ २ ॥

अनु०—उस ने इन लोकों की रचना की—अम्भ, मरीचि, मर, और आप। 'अम्भ' वह है जो द्युलोक से परे है और द्युलोक जिस की प्रतिष्ठा (आश्रय) है; अन्तरिक्ष 'मरीचि' है; पृथिवी 'मर' है; और जो नीचे है वह 'आप' है। (२)

सि० अ०—[उस ने] इन समस्त लोकों को उत्पन्न किया। पहले उस ने चार सत्ताएँ रचीं—अम्भ, मरीचि, मर, और आप। अम्भ जल है, जिस का आश्रय-स्थान द्युलोक के परे है; मरीचि अन्तरिक्ष-लोक है, जो द्युलोक के नीचे है; मर पृथ्वी-लोक है, जहाँ प्राणी मरते हैं; आप जल है, जो पृथ्वी-लोक के समस्त तलों के नीचे रहता है। [२]

स ईक्षत—इमे नु लोका, लोकपालान्नु सृजा इति। सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत् ॥ ३ ॥

उस ने ईक्षण (विचार) किया—'ये तो लोक हुए, अब लोकपालों की रचना करूँ। उस ने जल ही से पुरुष निकाल कर अवयवयुक्त किया। (३)

सि० अ०—पुनः उस ब्रह्म ने इच्छा की कि इस जगत् की तो मैं सृष्टि कर चुका, अब इस के पालक की भीं सृष्टि करूँ, ताकि पालकों के अभाव में जगत् बिखर न जाय। अतएव उस ने इच्छा की कि लोकपालों की सृष्टि करूँ जो जगत् के पालक हैं। [उस ने] जल में से एक अवयवरहित विराट् पुरुष निकाला। [३]

तमभ्यतपत्। तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाऽण्डं, मुखाद् वाग्, वाचोऽग्निः; नासिके निरभिद्येतां, नासिकाभ्यां प्राणः, प्राणाद् वायुः; अक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्, चक्षुष

आदित्यः; कर्णौ निरभिद्येतां, कर्णाभ्यां श्रोत्रं, श्रोत्राद् दिशः; त्वङ् निरभिद्यत, त्वचो लोमानि, लोमभ्य ओषधिवनस्पतयः; हृदयं निरभिद्यत, हृदयान् मनो, मनसश् चन्द्रमा; नाभिर् निरभिद्यत, नाभ्यां अपानो, ऽपानान् मृत्युः; शिश्नं निरभिद्यत, शिश्नाद् रेतो, रेतस आपः ॥ ४ ॥

अनु०—उस [विराट् पुरुष] के प्रति उस ने तप किया। उस तप्त [पिण्ड] से अण्डे के समान मुख निकला, मुख से वाक्, और वाक् से अग्नि; नासिकारन्ध्र निकले, नासिकारन्ध्रों से प्राण, और प्राण से वायु; नेत्र निकले, नेत्रों से चक्षु (चक्षुरिन्द्रिय), और चक्षु से आदित्य; कान निकले, कानों से श्रोत्रेन्द्रिय, और श्रोत्र से दिशाएँ; तत्चा निकली, त्वचा से लोम और लोमों से ओषधि-वनस्पतिआँ; हृदय निकला, हृदय से मन, और मन से चन्द्रमा; नाभि निकली, नाभि से अपान, और अपान से मृत्यु; शिश्न निकला, शिश्न से वीर्य, और वीर्य से आप। (४)

सि० अ०—उस के लिए ब्रह्म ने इच्छा की कि मुख उत्पन्न हो। टूट जाने योग्य अण्डे के समान मुख निकला। उस मुख से वाणी प्राप्त हुई, और वाणी से वाणी का देवता अग्नि प्रकट हुआ। उस छिद्र के अनन्तर नासिका के दो छिद्र प्रकट हुए। नासिका से श्वास-प्रश्वास प्रकट हुआ, और श्वास-प्रश्वास से श्वास-प्रश्वास का देवता वायु प्रकट हुआ। उस छिद्र के अनन्तर दो नेत्र प्रकट हुए, चक्षुरिन्द्रिय प्रकट हुई, और चक्षु से चक्षु का देवता सूर्य प्रकट हुआ। उस छिद्र के अनन्तर दो श्रोत्र प्रकट हुए, श्रोत्र से श्रोत्रेन्द्रिय प्रकट हुई, और श्रोत्रेन्द्रिय से श्रोत्रेन्द्रिय की देवता दिशाएँ प्रकट हुईं। उस के अनन्तर उस की त्वचा से स्पर्शेन्द्रिय प्रकट हुई, शरीर के लोम उत्पन्न हुए, और उस से ओषधि-वनस्पतिआँ प्रकट हुईं। उस के अनन्तर हृदय प्रकट हुआ। उस के पश्चात् हृदय में मन प्रकट हुआ, और मन से उस का देवता चन्द्रमा प्रकट हुआ। उस के अनन्तर नाभि प्रकट हुई, जिस के चारों ओर प्राण और अपान परस्पर आबद्ध हैं। उस के अनन्तर मलमूत्रोत्सर्ग के दो अवयव प्रकट हुए, उस के अनन्तर प्रजननेन्द्रिय प्रकट हुई, और उस से वीर्य प्रकट हुआ, और उस वीर्य से उस का देवता जल प्रकट हुआ। [४]

॥ इति प्रथमाध्याये प्रथमः खण्डः ॥

द्वितीयः खण्डः

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवे प्रापतन्। तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्। ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि, यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ ॥

अनु०—वे ये [इस प्रकार] रचे हुए देवगण इस महासमुद्र में पड़ गये। उस [पिण्ड] को [परमात्मा ने] क्षुधा-पिपासा से संयुक्त कर दिया। [तब] उन [इन्द्रियाभिमानी] देवताओं ने उस से कहा—हमारे लिए कोई आश्रयस्थान बतलाइए, जिस में स्थित हो कर हम अन्न भक्षण कर सकें। (१)

सि० अ०—यही देवता जो उत्पन्न हुए लोकों के पालक हैं, लोकों की उत्पत्ति से भवसागर के बन्धन में पड़ गये, क्षुधा और पिपासा के वशीभूत हो गये, और आत्मा से बोले कि हमारे लिए स्थान बतलाओ जहाँ रहकर हम अन्न-जल ग्रहण करें। [1]

ताभ्यो गामानयत्। ता अब्रुवन्—न वै नोऽयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्। ता अब्रुवन्—न वै नोऽयमलमिति ॥ २ ॥

अनु०—उन देवताओं के लिए गाय ले आया। वे बोले—'बिल्कुल नहीं, यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है'। [फिर वह] उन के लिए घोड़ा ले आया। वे बोले—'बिल्कुल नहीं, यह [भी] हमारे लिए पर्याप्त नहीं'। (२)

सि० अ०—[उस ने] गाय की आकृति प्रस्तुत की, जिस में प्रवेश कर [वे देवता] अन्न-जल ग्रहण करें। देवता बोले कि यह हमारे योग्य नहीं है। [उस ने] घोड़े की आकृति प्रस्तुत की, जिस में प्रवेश कर [वे देवता] अन्न-जल ग्रहण करें। देवता बोले कि यह भी हमारे योग्य नहीं है। [२]

ताभ्यः पुरुषमानयत्। ता अब्रुवन्—सुकृतं बतेति। पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्—यथायतनं प्रविशतेति ॥ ३ ॥

अनु०—[तब वह] उन के लिए पुरुष ले आया। वे बोले—'यह सुन्दर बना है, निश्चय पुरुष ही सुन्दर रचना है'। [उस ने] उन से कहा—'अपने-अपने आयतन (आश्रयस्थान) में प्रवेश कर जाओ'। (३)

सि० अ०—उस के पश्चात् [उस ने] मनुष्य की आकृति प्रस्तुत की; जिस शरीर में प्रवेश कर [वे] अन्न-जल ग्रहण करें। देवता बोले कि हम उत्तम आश्रय पा गये, क्योंकि शुभ कर्मों का कर्ता इसी के सदृश होता है। उस के अनन्तर आत्मा ने देवताओं से कहा कि अपने-अपने आयतन में प्रवेश कर जाओ। [३]

अग्निर् वाग् भूत्वा मुखं प्राविशद्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश् चक्षुर् भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्, चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ ४ ॥

अनु०—अग्नि वाणी हो कर मुख में प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण हो कर नासिका-रन्ध्रों में प्रविष्ट हुआ, सूर्य चक्षुरिन्द्रिय हो कर नेत्रों में प्रविष्ट हुआ, दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय हो कर कानों में प्रविष्ट हुईं, ओषधि और वनस्पतिआँ लोम हो कर त्वचा में प्रविष्ट हुईं, चन्द्रमा मन हो कर हृदय में प्रविष्ट हुआ, मृत्यु अपान हो कर नाभि में प्रविष्ट हुई, जल वीर्य हो कर शिश्न में प्रविष्ट हुआ। (४)

सि० अ०—अग्नि-देवता वाणी बन कर मुख में प्रविष्ट हुआ, वायु-देवता प्राण बन कर नासिका में प्रविष्ट हुआ, सूर्य-देवता चक्षुरिन्द्रिय बनकर चक्षु में प्रविष्ट हुआ, दिग्देवता श्रोत्रेन्द्रिय बन कर श्रोत्र में प्रविष्ट हुआ, ओषधि-वनस्पति का देवता लोम बनकर त्वचा में प्रविष्ट हुआ, चन्द्र-देवता मन बन कर हृदय में प्रविष्ट हुआ, मृत्यु का देवता अपान बनकर नाभि में प्रविष्ट हुआ, और जल का देवता वीर्य बनकर उपस्थेन्द्रिय में प्रविष्ट हुआ। [४]

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति। ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति। तस्माद् यस्य कस्यै च देवतायै हविर् गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥ ५ ॥

अनु०–उस (परमात्मा) से क्षुधा-पिपासा ने कहा—'हमारे लिए आश्रय बतलाइए'। [तब उस ने] उन से कहा—'तुम दोनों को मैं इन्हीं देवताओं में भागी करूँगा'। अतः जिस किसी देवता के लिए हवि दी जाती है उस में ये क्षुधा-पिपासा भी भागी होती ही हैं। (५)

सि० अ०—जब ये देवता अपने-अपने आयतनों में प्रविष्ट हो गये, तब क्षुधा और पिपासा ने आत्मा से कहा कि हमारे खाने की भी व्यवस्था करो। आत्मा बोला कि तुम्हें इन्हीं देवताओं में भागी करता हूँ और कि तुम अपना भाग इन्हीं सब से प्राप्त करो। जो कोई देवताओं को हवि देता है, क्षुधा और पिपासा उन में भागी बन कर अपना भाग प्राप्त करती हैं। इस का कारण यह है कि क्षुधा और पिपासा के बिना देवता हवि स्वीकार नहीं करते। [५]

।। इति प्रथमाध्याये द्वितीयः खण्डः ।।

तृतीयः खण्डः

स ईक्षत—इमे नु लोकाश् च लोकपालाश् च, अन्नमेभ्यः सृजा इति ।। १ ।।

अनु०–उस परमात्मा ने ईक्षण किया—ये लोक और लोकपाल तो हो गये, [अब] इन के लिए अन्न रचूँ। (१)

सि० अ०—स्रष्टा ने सोचा कि मैं ने लोक-लोकान्तर और लोकपाल तो उत्पन्न कर लिये और उन्हें क्षुधा और पिपासा भी दे दी, [अब] इन के भोजन के लिए भी कुछ उत्पन्न करना चाहिए। [१]

सोऽपोऽभ्यतपत्। ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। या वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ।। २ ।।

अनु०–उस ने आपों (जलों) के प्रति तप किया। उन अभितप्त आपों से एक मूर्ति उत्पन्न हुई। यह जो मूर्ति उत्पन्न हई वही अन्न है। (२)

सि० अ०—[उस ने] जल की चिन्ता की और उस जल से एक मूर्ति उत्पन्न की जो अचर थी और चर थी। और जो मूर्ति उत्पन्न हुई वही अन्न हुई। [२]

तदेनत् सृष्टं पराङत्यजिघांसत्। तद् वाचाऽजिघृक्षत्। तन् ना शक्नोद् वाचा ग्रहीतुम्। यद् धैनद् वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ।। ३ ।।

अनु०–[लोकपालों के आहारार्थ] रचे गये उस इस अन्न ने [उन की ओर से] मुँह फेर कर भागना चाहा। तब उस (आदिपुरुष) ने उसे वाणी द्वारा ग्रहण करना चाहा, [किन्तु] वह उसे वाणी से ग्रहण न

पुरुषसूक्तंकोंण्टु पुष्करोद्भवन् नन्नाय्
पुरुषोत्तमन्तन्ने ध्यानिच्चान् वळिपोले । ७५
स्तुतिच्चीवण्णं नमस्करिच्चनेरं देवन्
मधुद्वेषियुमुणर्न्नरुळिच्चेय्तीटिनान् । ७६
मधुरवाक्यङ्ङळाल् विशदस्मितपूर्व्वं
मथुरापुरितन्निल् वसुदेवात्मजनाय् ७७
देवकीतनयनाय् वन्नु ञान् जनिच्चीटुम् ।
देवकळेल्लावरुं भूमियिल्प्पिरक्कणम् । ७८
अरुळप्पाटीवण्णं पद्मजन् देवकळो-
टरुळिच्चेय्तु सत्यलोकवुं पुक्कीटिनान् । ७९
भूमियुं देवकळुं तापसवरन्मारु-
मामोदं पूण्टु कृतात्र्थात्मना नटकोंण्टार् । ८०
आदितेयन्मारेल्लां पिरन्नारवनियिल्
आदिनाथनेस्सेविच्चानन्दं वरुत्तुवान् । ८१
भूसुरन्मारायिट्टुं भूवरन्मारायिट्टुं
भूतले पिरन्नितु भूतियुं वाच्चु तुलोम् । ८२
यक्षकिन्नरगन्धर्व्वोरगचारणौघ-
रक्षोगुह्यकसिद्धविद्याधरादिकळुं ८३
अप्सरस्त्रीकळ्तानुमद्भुतं वरुंवण्णं
चिल्पुरुषनेप्परिचरिप्पानुळरायार् । ८४

जब उन्होंने इस प्रकार स्तुति करके नमस्कार किया तब देव मधुद्वेषी (विष्णु) ने मुस्कराते हुए मधुर वाक्यों के द्वारा निवेदन किया। "मथुरा नगरी में वसुदेव और देवकी के पुत्र के रूप में मैं जन्म लूँगा। सभी देव भी पृथिवी में जन्म ले लें। भगवान् ब्रह्मा आदि देवों से इस प्रकार कहकर सत्यलोक चले गये। भूमिदेवी, देवगण और तापसवर प्रमुदित हुए और कृतार्थ होकर चले गये। आदिनाथ की सेवा करके आनन्द का अनुभव करने के लिए सभी आदितेयों (देवगण) ने पृथ्वी पर जन्म लिया। ब्राह्मणों और भूपालों के रूप में भूतल में जन्म लिया और समृद्धि बढ़ी। यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, उरग (सर्प), चारणगण, रक्षस्, गुह्यक, सिद्ध, विद्याधर, अप्सरा आदि अद्भुत प्रकार से चित्पुरुष (चैतन्यरूपी विष्णु) की सेवा करने के लिये सन्नद्ध हुए। ८४

कृष्णनाय् पिरन्नतुमिङ्ङने जगन्नाथन्
विष्णुभक्तन्मारोक्क सेविच्चारानन्दिच्चार् । ८५
दुष्टरे शिक्षिक्कयुं शिष्टरे रक्षिक्कयुं
तुष्टनायेल्लावक्कुं सल्गति कोटुक्कयुं ८६
दोषं चेय्तवर्कळ्क्कु नल्लतु चेय्तवक्कुं
द्वेषमुळ्ळवर्कळ्क्कु स्नेहमुळ्ळवर्कळ्क्कु ८७
कामिच्च जनङ्ङळ्क्कु मोहिच्च जनङ्ङळ्क्कु
नामत्ते चोल्लुवोक्कुं रूपत्ते ध्यानिप्पोक्कुं ८८
भक्तरायुळ्ळवक्कुं सक्तरायुळ्ळवक्कुं
मुक्तिये वरुत्तुवानोरोरोतरत्तिले ८९
पारिल् वन्नवतरिच्चीटिनान् नारायणन्
तारिल् मातादियाकु परिवारङ्ङ्ळोटुम् । ९०
शत्रुमित्रोदासीनभेदमिल्लोरुनाळुं
नित्यनामीशन्तनिक्केल्लारुमोक्कुमत्रे । ९१
केवलं देवकळे स्नेहमोट्टेरयिल्ल
देववैरिकळेयुं द्वेषमिल्लोरुनाळुम् । ९२
सर्व्वजन्तुक्कळुटे जीवनायिरिप्पतुं
दिव्यनां नारायणन्तानेन्नु धरिच्चालुम् । ९३
अप्पोळे भेदमिल्लेन्नुळ्प्पूविलुरच्चीटा-
मुल्पलनेत्रन्तन्टे मायावैभवमेल्लाम् । ९४

जगन्नाथ ने कृष्ण के रूप में अवतार किया। सभी विष्णुभक्तों ने उनकी सेवा की और आनन्द का अनुभव किया। उन्होंने दुष्टों को दण्ड दिया, शिष्टों की रक्षा की तथा सन्तुष्ट होकर सबको सद्‌गति प्रदान की। पाप करने वालों को, भला करने वालों को, दिल में द्वेष रखने वालों को और स्नेह रखनेवालों को, कामी जनों को, मोहग्रस्त जनों को, नाम का जप करने वालों को, रूप का ध्यान करने वालों को, भक्तों को और सक्तों को भिन्न भिन्न प्रकार से मुक्ति दिलाने के लिए भगवान् नारायण ने लक्ष्मी आदि अपने परिवार के साथ पृथिवी पर अवतार किया। ९० शत्रु, मित्र, उदासीन, यह भेद वे कभी नहीं मानते थे क्योंकि उन नित्य ईश के लिए सब एक थे। केवल देवों के प्रति उनका अधिक स्नेह नहीं था, और देवों के शत्रुओं के प्रति उनका कभी द्वेष भी न था। समझ लीजिए कि सभी जन्तुओं के प्राण दिव्य नारायण ही थे। इसी से अपने

ज्ञानमिल्लातवर्क्कु भेदमुण्टेन्नु तोन्नु
ज्ञानिकळ्क्कुळ्ळितु तोन्नुकयिल्लातानुम् । ९५
समचित्तन्मार्क्कीक्कस्समनेन्नुळ्ळल्तोन्नुम्
मम सिद्धान्तं तन्नेयल्लितु धरापते । ९६
विषमचित्तन्मार्क्कु विषमनेन्नु तोन्नु
वृषपालकनात्मावेन्नतिनाले नूनम् । ९७
एन्नु वैशम्पायनमामुनि चोन्ननेरं
मन्नवनाय जनमेजयनुरचेय्तु । ९८
ओन्नुण्टु मनक्काम्पिल् तोन्नुन्नितिनिक्किप्पो-
ळिन्नितु शङ्किच्चिट्टु चोदिप्पान् पणितानुम् । ९९
दुश्चोद्यमेन्नु तिरुवुळ्ळक्केटुण्टाकायिक-
लिच्छयुण्टिनिक्किन्नु मोन्नु केळ्प्पतिनिप्पोळ् । १००
निन्तिरुवटियरियातेयिल्लेतुमेन्नाल्
सन्ततं केळ्प्पानुण्टो भाग्यमेन्नरिञ्ञील । १०१
दानव दैत्य देव गन्धर्व्वाप्सरस्सुकळ्
मानव यक्ष रक्षोजातियुं मट्टुमुळ्ळ १०२
जन्तुक्कळुण्टाय्वन्नतीक्कवेयरिवति-
नेन्तोरु कळिवेन्नु चिन्तिच्चेन् मनसि ञान् । १०३

मन में निर्णय कर लीजिए कि यह सब उत्पलनेत्र (विष्णु) की माया का वैभव है इसमें कोई पारस्परिक भेद नहीं है। जो अज्ञानी हैं उनके लिए भेद प्रतीत होता है, पर जो ज्ञानी हैं उनके लिए वह भेद प्रतीत नहीं होता। जो समचित्त हैं उनके लिए सम प्रतीत होता है। हे भूपाल! यह केवल मेरा सिद्धान्त नहीं है। जो विषमचित्त हैं उनके लिए विषम प्रतीत होता है। इसलिए निःसन्देह वृषपालक (धर्मरक्षक विष्णु) ही सबकी आत्मा हैं। ९७ जब महामुनि वैशम्पायन ने इस प्रकार कहा तब राजा जनमेजय ने निवेदन किया। एक बात मुझे अब सूझ रही है। आज इस शङ्का के बारे में पूँछना कठिन लग रहा है। अगर आप इसे कुप्रश्न समझ कर नाराज़ न हों तो मेरी पूँछने की इच्छा हो रही है। ऐसी कोई बात नहीं है जो आप भगवान् न जानते हों पर मुझे सुनने का निरन्तर भाग्य है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। मेरे मन में यह प्रश्न उठा कि दानव, दैत्य, गन्धर्व, अप्सरा, मानव, यक्ष, रक्षस् आदि प्राणियों का उत्पत्तिप्रकार जानने का क्या उपाय है? अगर मैं

ञानतु केळ्प्पान्तक्क पात्रमेन्निरिक्किलो
सानन्दमरुळिच्चय्तीटणमेन्ननेरम् । १०४
नमस्ते नारायण ! नमस्ते जगन्नाथ !
नमस्ते समस्तेश ! तुणय्केन्नरुळ्चेय्तु । १०५
केट्टुकोण्टालुमेङ्किलादिये देवादिकळ्
वाट्टमेन्नियेे मुन्नमुण्टायप्रकारङ्ङळ् । १०६
अळविल्लात वेळ्ळमेन्नियेे लोकमोन्तुं
प्रळयकालत्तिङ्कलिल्लेन्तु धरिच्चालुम् । १०७
अप्पोळुमोरु लयमिल्लात नारायणन्
चिल्पुमान् नाभितन्निलुण्टायितोरु पद्मं । १०८
अप्पूविलुद्भविच्चू चोल्लोङ्ङु विरिञ्चनु-
मप्पोळुतवनेक्कोण्टोक्कवे सृष्टिप्पिच्चान् । १०९
अेन्नतिल् नटेनटेयुण्टायी चतुर्म्मुखन्
तन्नुटे मनस्सिल् निन्नारु तापसन्मारुम् । ११०
पेरुकळ् मरीचियुमत्रियुमंगिरस्सुं
धीरनां पुलस्त्यनुं पुलहन् क्रतुतानुं । १११
अवरिल् मरीचिक्कु काश्यपनुण्टाय्वन्ना-
नवङ्कल्निन्तु नानाजन्तुक्कळुण्टायतुम् । ११२
दक्षनां प्रजापतितन्नुटे मकळरां
मय्क्कण्णिमारिल् पतिम्मून्निनें वेट्टानवन् । ११३

यह सब सुनने योग्य पात्र हूँ तो मुझे सानन्द सुनाइए। इस पर उन्होंने कहा—१०४ हे नारायण ! नमस्ते ! हे जगन्नाथ! नमस्ते ! हे समस्तेश ! नमस्ते ! मेरी सहायता करो ! अगर इच्छा है तो बिना संकोच के सुन लीजिए कि प्रारंभ से ही देवादिकों की कैसे उत्पत्ति हुई। जान लीजिए कि प्रलयकाल में निस्सीम पानी के अतिरिक्त और कुछ न था। उस समय भी नारायण तो लयहीन थे और उनके नाभि में एक पद्म पैदा हुआ। उस पुष्प में विख्यात विरिंच (ब्रह्मा) का उद्भव हुआ और नारायण ने उससे इस जगत् की सृष्टि करायी। सबसे पहले चतुर्मुख (ब्रह्मा) के मन से छः तापसों का जन्म हुआ। ११० उनके नाम इस प्रकार हैं—मरीचि, अत्रि, अंगिरस्, पुलस्त्य, पुलह, और क्रतु। उनमें मरीचि का काश्यप नामक पुत्र हुआ जिससे तरह-तरह के प्राणियों का जन्म हुआ। उसने प्रजापति दक्ष की कन्याओं में से तेरह के साथ विवाह

अदिति, दिति, दनु, कालयुमनायुष
पतिशुश्रूषारतयाकिय सिंहिकयुं ११४
मुनियु क्रोधतानुं ध्रुवयुं वरिष्ठयु
विनत कपिलयुं कद्रुवुमिवरॆल्लाम् । ११५
इवरिलदितियिलादित्यन्मारुण्टाय् ।
धातावुं मित्रन्तानुमर्यमा शक्रनॆन्नु ११६
वरुणनंशस्भगन् विवस्वान् पूषावॆन्नुं
सविता पिन्नॆ त्वष्टा विष्णुवुमिवरॆल्लाम् । ११७
दितितन् मकनल्लो हिरण्यकशिपुतान्
सुतन्मारायिट्टवनंचुपेरुण्टाय्वन्नु । ११८
प्रह्लादन् सह्लादनुमनुह्लादनुं पिन्नॆ
शिबियुं बाष्कळनुमवक्कुं नाममॆटो । ११९
अवरिल् प्रह्लादनु मून्नु पुत्रन्मारुण्टा-
यवर्पोल् विरोचनन् सुंभनु निसुंभनुं । १२०
अवरिल् विरोचनन्तन्मकन् महाबलि-
यवनु नूरुमक्कळवरिल् ज्येष्ठन् बाणन् । १२१
दनुवामवळ् पॆट्टु नाल्पतुपेरुण्टायि
दनुजन्मारामवर् नाल्पतिन् पेरुं चॊल्लाम् । १२२
विप्रचित्तियुं पिन्नॆशंबरन् नमुचियुं
चॊल्पेरुं पुलोमावुमसिलोमावुं केशि १२३

किया। उन सबके नाम ये हैं—१ अदिति, २ दित, ३ दनु, ४ काला, ५ अनायुषा, ६ पतिशुश्रूषा में रत सिंहिका, ७ मुनि, ८ क्रोधा, ९ ध्रुवा, १० वरिष्टा, ११ विनता, १२ कपिला और १३ कद्रू। इनमें अदिति से आदित्यों का जन्म हुआ। जिनके नाम ये हैं—१ धाता, २ मित्र, ३ अर्यमा, ४ शक्र, ५ वरुण, ६ अंशस्, ७ भग, ८ विवस्वान्, ९ पूषा, १० सविता, ११ त्वष्टा, १२ विष्णु। दिति का पुत्र हिरण्यकशिपु हुआ जिनके पाँच पुत्र हुए—११८ उनके नाम हैं—१ प्रह्लाद, २ संह्लाद, ३ अनुह्लाद, ४ शिबि, ५ बाष्कल। उनमें प्रह्लाद के तीन पुत्र हुए—१ विरोचन, २ शुंभ और निशुंभ। उनमें विरोचन का पुत्र हुआ महाबलि जिनके सौ पुत्रों में बाण ही ज्येष्ठ था। दनु ने चालीस पुत्रों को जन्म दिया। वे ही दनुज कहलाते हैं और उनके नाम इस प्रकार हैं। विप्रचित्ति, शंबर, नमुचि, विख्यात पुलोमा, असिलोमा, केशि, दुर्जय,

दुर्ज्जयनश्वशिरावमलनयश्शिरा-
वयश्शङ्कुवुं शङ्कु गगनमूर्धावेंन्नुं १२४
वेगवान् केतुमानुं स्वर्भानु चित्रभानु-
वश्वनुमश्वपति वृषपर्व्वावुतानुं १२५
जगनुमश्वग्रीवन् सूक्ष्मनुं तुहुण्डनुं
खसृवुंतानुमेकचित्तनुं विरूपाक्षन् १२६
हरनुमहरनुं निचन्द्रन् निकुंभनुं
कपथन् कापथनुं शरदन् शरभनुं १२७
चन्द्रमावेंन्नुमिवर् नाल्पतु दानवन्मार् ।
सिंहिक पेंट्टिट्टुळ्ळु राहुवाकिय वीरन् । १२८
सुचन्द्रन् चन्द्रहर्त्ता चन्द्रमर्द्दनन्तानुं
क्रूरस्वभावनेंन्नुं क्रूर पेंट्टुण्टाय्वन्नु । १२९
अप्पारम्पर्यं पऱञ्ञीटुवान् पणि तुलोम् ।
दैत्यपक्षत्तिल् क्रोधवशन्मारेंन्न कूट्टं १३०
पत्तुपेरुण्टु पिन्नेंच्चोंल्लीटामवरेयुम् ।
एकाक्षनमृतपन् प्रलंबन् नरकनुं १३१
वातापितानुं शत्रुतपनन् सदन्तनुं
गर्भिष्ठन् चन्द्रनायुर्द्दीर्घजिह्वनुमेव- १३२
मसंख्यमवरुटे पुत्रपौत्रन्मारेंल्लाम् ।
चोंल्लुवननायुषतन्नुटे सुतन्मारे १३३

अश्वशिरा, अमल, अयःशिरा, अयःशङ्कु, शङ्कु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, चित्रभानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, जग, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहण्ड, खसृ, एकचित्त, विरूपाक्ष, हर, अहर, निचन्द्र, निकंभ, कपथ, कापथ, शरद, शरभ, चन्द्रमा—इस प्रकार चालीस दानव हुए। राहु नामक वीर को सिंहिका ने जन्म दिया। १२८ क्रूरा ने सुचन्द्र, चन्द्रहर्ता, चन्द्रमर्दन और क्रूरस्वभाव को पैदा किया। उस परम्परा का वर्णन करना कठिन काम है। दैत्यपक्ष में एक क्रोधी वर्ग है, दस दैत्यों का। उनके नाम भी बतला दूँगा। एकाक्ष, अमृतप, प्रलंब, नरक वातापि, शत्रुतपन, सदन्त, गर्भिष्ठ, चन्द्र, आयु, दीर्घजिह्व, इस प्रकार हैं और इनके पुत्र-पौत्र असंख्य हैं। मैं अब अनायुषा के पुत्रों को बतला रहा हूँ। विष्कर, बल, वीर, वृत्र इस प्रकार चार अत्यन्त बलवान् पुत्र हुए। जान लीजिए कि काला के पुत्र कालकेय कहलाते हैं। उनके नाम

विष्करन् बलन् वीरन् वृत्रनुमेन्नु नाल्वर्
मक्कळुण्टवर्कळुमेत्रयु बलवान्मार् । १३४
कालयामवळुटे मक्कळेन्नरिञ्ञालुं
कालकेयन्मारवर्तम्मुटे पेरु चौल्लाम् । १३५
दुष्टनां विनाशनन् क्रोधनन् क्रोधहन्ता
पिन्नेतु विवर्धननक्रोधनिवरेल्लां १३६
कालकेयन्मार् देववैरिकळरिञ्ञालुम् ।
इच्चौन्न दैत्यपक्षत्तिङ्कलुळ्ळवर्क्केल्ला- १३७
मच्छनाकिय शुक्रन् भार्ग्गवनुपाध्यायन् ।
निश्शेषं देवासुरन्मारुटे पारम्पर्यं १३८
निश्चयं पऱवतिनाक्कुमेयरुतल्लो ।
विनततन्टे मक्कळ् वैनतेयन्मारेल्लां १३९
विरवोटवरुटे पेरुकळ् तार्क्ष्यनेन्नुं
अरिष्टनेमितानुं गरुडनरुणनु- १४०
मारुणि वारुणियुं विनतातनयन्मार् ।
कद्रुविन् मक्कळल्लो काद्रवेयन्मारेल्ला- १४१
मनन्तन् वासुकियुं तक्षकन् कार्क्कोटकन्
पद्मनुं महापद्मन् गुळिकन् शंखपालन् १४२
अप्परिषकळुटे सन्तति चौल्लिक्कूटा
मुल्पाटु चुरुक्कि ञानोट्टुरियिच्चेनल्लो । १४३
मुनियामवळुटे पुत्रन्मार् मौनेयन्मा-
रवर्कळुटे नाममादिये केळ्प्पिनेङ्किल् । १४४

बतलाऊँगा । १३५ दुष्ट विनाशन, क्रोधन, क्रोधहन्ता, उसके बाद विवर्धन, अक्रोधन, ये ही कालकेय हैं और सब देवों के वैरी हैं । दैत्यपक्ष में जितने कहे गये हैं उन सबके पिता (रक्षक) हैं उपाध्याय भार्गव शुक्र । देवों और असुरों की सारी परम्परा निश्चित रूप से कोई भी नहीं बतला सकता । विनता के पुत्र वैनतेय कहलाते हैं । उनके अलग अलग नाम हैं—तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड, अरुण, आरुणि, और वारुणि । कद्रू के पुत्र काद्रवेय कहलाते हैं । वे हैं—अनन्त, वासुकि, तक्षक, कार्क्कोटक, पद्म, महापद्म, गुडिक, शंखपाल । उनकी सन्तति बतलाना कठिन है । पहले तो संक्षेप में मैं कह भी चुका हूँ । १४३ मुनि के पुत्र मौनेय हैं । उनके नाम शुरू से सुन लीजिए । भीमसेन, उग्रसेन, सुवर्ण, वरुण,

भीमसेननुमुग्रसेननुं सुवर्ण्णनुं
वरुणन् गोपतियुं धृतराष्ट्रनुं पिन्ने १४५
सूर्यवर्चसन्तानुं पत्रवानर्क्कवर्ण्णन्
प्रयुगन् चित्ररथन् सर्व्ववद्वशितानुं १४६
वीरनां शालिशिरा धृष्टद्युम्ननुं कलि
पतिनाऱामतल्लो नारदनॆन्नु नामम् । १४७
देवगन्धर्व्वन्मारॆन्निवरॆच्चॊल्लीटुन्नु
देवकळोटुतन्ने तुल्यन्मारिवरॆल्लां । १४८
प्रापयामवळुटॆ मक्कळुं मकळरुं
प्राभवमेऱॆयुळ्ळोर् नामङ्ङळ् चॊल्लामल्लो । १४९
अनवद्ययुमनुवशयुं मदिरयुं
मार्ग्गणप्रियतानुं मन्नव ! सुभगयुं १५०
भंगियुमित्थमेऴु नारिकळुण्टाय्वन्नु ।
सिद्धनुं पूर्ण्णन् तानुं बर्हियुं पूर्णाशनुं १५१
ब्रह्मचारियुं रतिगुणनुं सुवर्ण्णनुं
चॊल्लॆऴुं विश्वावसु भानुवुं सुभद्रनुं १५२
पुत्रन्मारिवर्पत्तुं प्रापेयन्मारॆन्नऱि-
कद्भुतमप्सरस्सां वंशमॆन्नरिञ्ञालुम् । १५३
वरिष्ठतनिक्कुळ्ळोरपत्यमतु केळ्प्पिन्
चुरुक्किच्चॊल्वनलंबुसयुं मिश्रकेशि १५४
चॊल्लॆऴुं विद्युद्वर्ण्णा ललनाख्ययुं पुन-
ररुण रक्षतयुं रंभयुं मनोरम १५५

गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चस्, पत्रवान्, अर्कवर्ण, प्रयुग, चित्ररथ, सर्ववद्वशी, वीर शालिशिरा, धृष्टद्युम्न, कलि, और सोलहवें पुत्र का नाम है नारद। इनको देवगन्धर्व कहते हैं और जान लीजिए कि ये सब देवों के समान हैं। प्रापा के पुत्र और पुत्रियाँ प्रभावशाली थे। उनके नाम भी सुनाऊँगा। १४९ हे भूपाल !, अनवद्या, अनुवशा, मदिरा, मार्गणप्रिया, सुभगा, भंगि, इस प्रकार सात पुत्रियाँ हुईं। सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णाश, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुवर्ण, विख्यात विश्वावसु, भानु, सुभद्रु इस प्रकार दस पुत्र हुए जो प्रापेय कहलाते हैं। फिर जान लीजिए कि अप्सराओं का वंश भी अद्भुत है। वरिष्ठा के सन्तानों का नाम भी सुन लीजिए संक्षेप में कहूँगा।

तार मध्ये शोणिताक्षे द्विविद-वानर ❋ नखे विदारण करि करिला जर्ज्जर
आर तार दुइ भुज धरि घुराइया ❋ मारिलेक ताहारे भूतले आछाड़िया २४०
श्रीमैन्द यूपाक्ष-सने करि बाहु-रण ❋ परे तार भुजे धरि करिल चापन
ताहाते यूपाक्ष करि शब्द घोरतर ❋ चलि गेल देखिवारे प्रेत-पुरीश्वर ४१
तबे विरूपाक्ष-नामे एक निशाचर ❋ कपि-सैन्य-उपरे वर्षन करे शर
सहिते ना पारि तार शरेर प्रहार ❋ समर त्यजिया कपि पलाय अपार
ताहा देखि मैन्द एक महीधर धरि ❋ निक्षेपिल विरूपाक्ष-मस्तक-उपरि
ताहे हत ह'ये विरूपाक्ष निशाचर ❋ भूतले पड़िल, येन छिन्न धराधर ४२
तबे मैन्द महाघोर सिंहनाद करि ❋ बधिते लागिला मुष्टि मारि सब अरि
ताहा देखि विद्युन्माली-नामे जातुधान ❋ रथे थाकि वृष्टि करे बहुतर बाण
दशदिक् आच्छादन करि सेह शरे ❋ बिन्धिते लागिल यत भल्लूक-वानरे
तार शराघाते केह स्थिर हैते नारे ❋ वासना करये रण छाड़ि पलावारे
ताहा निरखिया नल ल'ये तरु-शिला ❋ विद्युन्माली बधिवारे वर्षिते लागिला
सेह शत-शत शर करिया वर्णन ❋ सेइसब शाखी शिला करिला कर्त्तन
पुनश्च नलेर प्राण विनाश करिते ❋ कोदण्ड कर्षिया काण्ड लागिल एड़िते

तब द्विविद वानर ने शोणिताक्ष को नखों के आघात से लहूलुहान कर दिया। फिर उसके दोनों हाथों को पकड़ कर उसको घुमाया और धरती पर पटक कर मार डाला ॥ २४० ॥

श्रीमैन्द ने यूपाक्ष के साथ कुछ देर मल्लयुद्ध किया। फिर उसको बाहों से बाँध कर दबाने लग गया। इससे यूपाक्ष ने घोर चीत्कार कर प्रेतपुरी के प्रभु (यम) को देखने के लिए प्रस्थान किया ॥ ४१ ॥

फिर विरूपाक्ष नामक एक निशाचर वानरों पर बाण बरसाने लगा। उसके बाणों का प्रहार सह न सकने के कारण बहुत सारे कपि समरभूमि त्याग कर भागने लग गये। यह देखकर मैन्द ने एक पहाड़ पकड़ कर विरूपाक्ष के सिर पर फेंका। इससे घायल होकर निशाचर विरूपाक्ष यों भूमि पर जा गिरा मानों पहाड़ टूट पड़ा हो ॥ ४२ ॥

तब मैन्द घोर सिंहनाद करते हुए घूँसा मार-मार कर सारे शत्रुओं का वध करने लगा। यह देखकर विद्युन्माली नामक राक्षस रथ पर चढ़ कर अनेक बाण बरसाने लगा। उन बाणों से दशों दिशाएँ छा गईं, भालू और वानरों के शरीर में वे बाण जाकर चुभने लगे। उसके शराघात के सामने कोई टिक नहीं पाता और सभी का जी करने लगता कि रण छोड़कर भाग जायँ। यह देखकर नल वृक्ष और शिला लेकर विद्युन्माली का वध करने के लिए उस पर बरसाने लगा। वह विद्युन्माली भी शत-शत बाणों की वर्षा करते हुए उन वृक्ष और शिलाओं को काटता रहा। फिर नल के प्राण लेने

से-सकल शरे विश्वकर्म्मार नन्दन ❋ शाल-शिला फेलाइया करिल वारण
एइरूपे नल वृष्टि करे वृक्षगण ❋ विद्युन्माली करे ताहा वाणेते छेदन
विद्युन्माली यावतीय शर-वृष्टि करे ❋ नल ताहा निवारये पादप-प्रस्तरे
एइरूपे किछुकाल सेइ दुइजन ❋ करिलेक समभावे घोरतर रण
तबे सेइ निशाचर निःशर हइया ❋ कहितेछे नल-प्रति चातुरी करिया
विश्वकर्मा-पुत्र, आजि तोमा-सह रणे ❋ बड़इ आनन्द आमि पाइलाम मने
देखिया तोमार बल-विक्रम अपार ❋ इच्छा हय बाहुयुद्ध करिते आमार
बलये विश्वकर्म्मार नन्दन ताहारे ❋ आमारो वासना एइ अन्तर-माझारे
ताहा शुनि रथ हैते राक्षस नामिल ❋ तबे दुइ वीरे बाहुयुद्ध आरम्भिल
हाते-हाते भुजे-भुजे कपाले-कपाले ❋ बुके-बुके प्रहार करये दुइ शाले
उन्मत्त मातङ्ग येन दशने-दशने ❋ युद्ध करे हेन शब्द हय घने-घने
वज्रेर समान अंग उभयेर हय ❋ काहारो प्रहारे कोनजन व्यग्र नय
कभु बाहु-प्रहार करये कोनजन ❋ वज्रेते करये येन विकट निःस्वन
कभु नले ठेलि ल'ये जाय विद्युन्माली ❋ कभु विद्युन्मालीरे से नल बलशाली
कभु आकर्षये, कभु करे उत्तोलन ❋ कभु चापि धरे, कभु करये पातन
मुष्टि-दन्त-नखे कभु करये प्रहार ❋ दुइ सिंहे करे येन युद्ध अनिवार

के लिए वह धनुष खींच कर शर-वर्षा करता रहा। विश्वकर्मा-नन्दन नल ने उन वाणों का निवारण पादप-प्रस्तर फेंक कर किया। इस प्रकार नल ने जितने वृक्ष फेंके विद्युन्माली ने उनको बाणों से काट डाला। और विद्युन्माली ने जितने वाण बरसाये नल ने उनका निवारण पादपों और प्रस्तरों से किया। इस प्रकार कुछ समय तक ये दोनों समान रूप से घोरतर युद्ध करते रहे। फिर जब उस राक्षस के पास सारे बाण चुक गये तो उसने चतुराई से नल से कहा, हे विश्वकर्मा-नन्दन, आज तुम्हारे साथ युद्ध करते हुए मुझको बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। तुम्हारा बल-विक्रम देखकर तुम्हारे साथ बाहुयुद्ध करने की इच्छा हो रही है। विश्वकर्मा के पुत्र ने भी जवाब दिया, मेरी भी आन्तरिक अभिलाषा ऐसी ही है। यह सुनकर राक्षस रथ से उतर आया और दोनों में बाहु-युद्ध छिड़ गया। हाथ हाथ पर, और बाँह बाँह पर, माथा माथे पर और वक्ष वक्ष पर, मानों दो शालवृक्ष एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। मानों दो मत्त-मातंग हों, यों दाँत किटकिटा कर युद्ध करने का शब्द होने लगा। दोनों के अंग ही वज्र के समान हैं। किसी के भी प्रहार से कोई व्याकुल नहीं होता। कभी कोई हाथों से ऐसा प्रहार करता मानों वज्रपात का घोर नाद हुआ। कभी नल को धकेलता हुआ विद्युन्माली ले जाता, तो कभी बलशाली नल विद्युन्माली को। कभी घसीटते तो कभी ऊपर उठा लेते, कभी धर दबाते तो कभी पटक देते। कभी नख, दन्त और मुष्टि से प्रहार करते। दो

एइरूपे दुइ-दण्डकाल दुइजन ❋ करिलेक न्यूनाधिक्य-शून्य बाहु-रण
तबे त नलेर बल ना पारि सहिते ❋ विद्युम्माली हस्त तार छाड़िल श्रान्तिते
पुनर्व्वार रथे शीघ्र करि आरोहण ❋ अति-घोर शक्ति एक करिल क्षेपण
ताहा देखि नल एक गिरिश्रृंग धरि ❋ विद्युम्माली-उपरे छाड़िल क्रोध करि
सेइ श्रृंगे पाड़े रथ सारथि-सहित ❋ विद्युम्माली त्यजे प्राण हइया चूर्णित ४३
तबे भीत ह'ये यत निशाचर गण ❋ कुम्भकर्ण-पुत्र-काछे करे पलायन
ताहा देखि रणमत्त वानर-निकर ❋ घन-घन सिंहनाद करे घोरतर
ताहा देखि कुम्भ-वीर अधिक कुपिल ❋ स्वसैन्ये सान्त्वना करि समरे साजिल
कुम्भ-वीरे देखिया पलाय कपिगण ❋ महेन्द्र देवेन्द्र आर बालिर नन्दन
साहसे करिया भर गेल तिनजन ❋ कुम्भेर सहित गिया आरम्भिल रण
महेन्द्र देवेन्द्र तबे दुइ वीरवर ❋ गाछ-पाथर ल'ये फेले कुम्भेर उपर
गाछ-पाथर काटि पाड़े चोख-चोख शरे ❋ बिन्धिया जर्ज्जर कैल महेन्द्र-वानरे
महेन्द्र कातर देखि देवेन्द्र चिन्तित ❋ त्रिश-योजन गिरि एक आनिल त्वरित
त्रिश-योजन पर्व्वत एड़िल दिया टान ❋ कुम्भ-वीर-बाणेते हइल खान-खान
बाणेते पर्व्वत काटि खान-खान करे ❋ बिन्धिया जर्ज्जर करे देवेन्द्र-वानरे
महेन्द्र देवेन्द्र दोंहे हैल अचेतन ❋ कोपेते पर्व्वत एड़े बालिर नन्दन

सिंह मानों लगातार लड़ते जा रहे हैं, इस प्रकार वे दोनों दो दंड से अधिक समय तक बराबरी का बाहु-युद्ध करते रहे। फिर नल का बल सहन न कर सकने से विद्युन्माली ने थक कर अपने हाथ लटका लिये। फिर फुरती से रथ पर सवार होकर उसने एक शक्ति फेंक कर मारी। यह देखकर नल ने पर्वत की एक चोटी उखाड़ कर विद्युन्माली के ऊपर दे मारी। उस चोटी के प्रहार से रथ और सारथी के सहित विद्युन्माली ने चूर्ण-विचूर्ण होते हुए प्राण त्याग किया॥ ४३॥

तब भयभीत होकर सारे राक्षस कुम्भकर्ण-पुत्र की ओर भागे। यह देख कर सारा वानर-समुदाय जोर से सिंहनाद करने लग गया। यह देखकर वीर कुम्भ अत्यन्त क्रोधित हुआ और अपनी सेना को सँजो कर रण के लिए तैयार हुआ। वीर कुम्भ को देखकर सारे कपि भागने लग गये। यह देखकर महेन्द्र, देवेन्द्र और बालीनन्दन साहस करते हुए आगे बढ़े। आगे बढ़कर वे कुम्भ के साथ युद्ध करने लग गये। दोनों वीर महेन्द्र और देवेन्द्र पेड़-पत्थर लाकर कुम्भ पर फेंकने लगे। पैने-पैने वाणों से पेड़-पत्थर को काट कर (कुम्भ ने) महेन्द्र वानर को वाणों से छेद दिया। महेन्द्र को कातर देखकर देवेन्द्र चिन्तित हुआ और तीस योजन वाला एक पर्वत झटपट उठा लाया। तीस योजन वाला वह पर्वत जब उसने फेंक कर मारा तो कुम्भ-वीर के वाणों से वह खंड-खंड हो गया। वाणों से पर्वत को खंड-खंड काट डालने के बाद

अंगदेर पर्व्वत बाणेते फेले केटे ❋ शतबाण अंगदेर मारिल ललाटे
बाणेते अङ्गद-वीर डाके परित्राहि ❋ सकल वानर गेल रघुनाथ ठाँहि
तिनवीर अचेतन शुनि एइ कथा ❋ मनेते श्रीरामचन्द्र पाइलेन व्यथा ४४
ऋषभ कुमुद आर सुषेण सेनापति ❋ तिनवीरे रघुनाथ करिला आरति
श्रीरामेर आज्ञा पेये चले तिनजन ❋ आकाश छाइया करे वृक्ष-वरिषण
कुपिल से कुम्भ-वीर पूरिया सन्धान ❋ तिनवीरेर गाछ-पाथर करे खान-खान
जर्ज्जर हइल तारा कुम्भ-वीर-बाणे ❋ भय पेये तिनजन भंग दिल रणे ४५
तिनवीर पलाइया सुग्रीवेरे कय ❋ रुषिल सुग्रीव-राजा संग्रामे दुर्ज्जय
कुपिया सुग्रीव-वीर एकलाफे जाय ❋ पाकल करिया आँखि कुम्भ-वीरे चाय
कुम्भ बले, वानरा रे, बेड़ास डाले डाले ❋ तोर एत विक्रम ना छिल कोनकाले
सुग्रीव बलिछे, द्वन्द्व नाहि कारो सने ❋ ना जान विक्रम तुमि एइ से कारणे
तोर सने रणे करि विक्रम-परीक्षा ❋ पड़िलि आमार हाते, नाहि तोर रक्षा
यमराज जेगे ब'से, आछे तोर तरे ❋ देखाब विक्रम आजि, जावि यमघरे
तोर पिता कुम्भकर्ण, से जाने विक्रम ❋ क्षणेक विलम्ब कर, देखाइब यम

देवेन्द्र वानर को उसने बाणों से बिंध डाला। महेन्द्र और देवेन्द्र दोनों जब अचेतन हो गये तो बाली के नन्दन ने क्रोध से एक पर्वत फेंका। बाणों से अंगद के फेंके हुए पर्वत को खंड-खंड करने के बाद उसने अंगद के ललाट पर सौ बाण मारे। बाणों के मारे जब अंगद त्राहि-त्राहि मचाने लगा तो सारे वानर रघुनाथ के पास गये। यह सुनकर कि तीनों वीर अचेतन हो गये हैं श्रीरामचन्द्र व्यथित हुए ॥ ४४ ॥

तब रघुनाथ ने ऋषभ, कुमुद और सुषेण सेनापति को आदेश दिया। श्रीरामचन्द्र की आज्ञा पाकर तीनों वीर चल पड़े। उन्होंने इस प्रकार वृक्ष बरसाना शुरू किया कि आकाश छा गया। इससे कुम्भवीर अत्यन्त क्रोधित हो बाण चलाने और तीनों वीरों द्वारा फेंके पेड़-पत्थरों को खंड-खंड करने लगा। कुम्भवीर के साथ युद्ध में घायल हो वे तीनों ही डर कर भाग खड़े हुए ॥ ४५ ॥

तीनों वीर भाग कर राजा सुग्रीव के पास गये और सारा ब्योरा सुनाया। संग्राम में दुर्जय राजा सुग्रीव यह सुनकर अत्यन्त रुष्ट हुए। रोष से एक-छलाँग में राजा सुग्रीव वहाँ पहुँचे और आँखें तरेर कर कुम्भवीर को देखने लगे। कुम्भ कहता, अरे वानर, तू डाली-डाली पर विचरता रहता है, तुझमें इतना पराक्रम तो कभी नहीं था। सुग्रीव ने कहा, किसी के साथ हम लोगों का झगड़ा नहीं था इसीलिए तुझको हमारे पराक्रम का पता नहीं चला। तेरे साथ युद्ध में पराक्रम की परीक्षा हो रही है, तू, मेरे हाथों में आ गया है अब तेरी रक्षा नहीं। तेरे लिए यमराज प्रतीक्षा में जागते हुए बैठे हैं, आज मैं

कुपिया से कुम्भ-वीर तीक्ष्ण बाण जोड़े ✻ तिनशत बाण राजा सुग्रीवेरे एड़े
बाण खेये सुग्रीव ये चिन्तित अन्तर ✻ लाफ दिया पड़े तार रथेर उपर
धनुक धरिया टाने, केड़े निते नारे ✻ रथ हैते कुम्भ-वीर फेले सुग्रीवेरे
आछाड़ खाइया राजा हैल अचेतन ✻ चेतन पाइया पुनः बले ततक्षण
तोर बापेर जाठा ये निलाम एकहाते ✻ तोर हातेर धनुखान नारिनु छाड़ाते
बापेर समान तुइ वीर-चूड़ामणि ✻ इन्द्रजितार सम तोर धनुक बाखानि
कुम्भ-वीर बले, धनु दूरे परिहरि ✻ रिक्तहस्ते आइस दु'जने युद्ध करि
अस्त्र फेलि दुइजने करे हुड़ाहुड़ि ✻ हुड़ाहुड़ि घुचिले लागिल जड़ाजड़ि
कुम्भ-वीर चापड़ मारिल बाहुबले ✻ पड़िल सुग्रीव-राजा समुद्रेर जले
रामेर किङ्कर देखि सागर गभीर ✻ मध्ये चड़ा पड़िल, हइल अल्प नीर
माटीते दाण्डाये फिरे आइल एकलाफे ✻ कुम्भ-वीर विक्रमे सुग्रीव-राजा काँपे
पुनः कोपे कुम्भ-वीर मुष्ट्याघातमारे ✻ पड़िल सुग्रीव-राजा दुर्ज्जय-प्रहारे
चैतन्य हाराय, मुखे उठे रक्त-फेना ✻ सुमेरु-पर्व्वते येन पड़िल झञ्झना
संवित् पाइया उठि वानरेर नाथ ✻ कुम्भ-वीर उपरे करिल पदाघात

अपना पराक्रम दिखाऊँगा और तू यमसदन जायेगा। तेरा पिता कुम्भकर्ण मेरा पराक्रम जानता था, थोड़ा सा ठहर जा, तेरी यम से भेंट करा दूँ। तब कुपित होकर कुम्भवीर ने पैने वाण चलाये और तीन सौ वाण सुग्रीव को आ लगे। वाण के आघात से सुग्रीव चिन्तित हुआ और कूद कर उसके रथ पर चढ़ गया। रथ पर चढ़कर वह उसका धनुष पकड़ कर खींचने लगा, लेकिन छीन न सका। रथ से कुम्भवीर ने सुग्रीव को नीचे गिरा दिया, नीचे गिर कर सुग्रीव अचेतन हो गया। चेतना पाकर फिर उसने कहा, तेरे बाप के हाथ से मैंने शेल एक हाथ से छीन लिया था और तेरे हाथ का धनुष मैं दोनों हाथों से न छीन सका। तू अपने बाप के समान ही वीर-चूड़ामणि है और इन्द्रजीत जैसा ही तेरे धनुष की ख्याति है। तब बीर कुम्भ ने कहा, आओ धनुष को फेंककर हमलोग खुले हाथ लड़ें। तब अस्त्र फेंक कर दोनों दाँव-पेच करने लगे। हाथापाई करते-करते दोनों में गुत्थम-गुत्था शुरू हो गया। कुम्भवीर ने एक चपेट मारा तो राजा सुग्रीव समुद्र के जल में जा गिरे। राम के किंकर को देखकर गहरा समुद्र उस स्थान पर छिछला हो गया। जमीन पर खड़े होने के बाद सुग्रीव फिर एक छलाँग में वहाँ लौट आया। कुम्भ-वीर के पराक्रम से राजा सुग्रीव काँपने लगे। फिर क्रुद्ध होकर कुम्भवीर ने सुग्रीव पर मुष्टि-प्रहार किया, मार खाकर राजा सुग्रीव फिर भूमि पर गिर पड़े। उनके मुँह से खून और झाग निकलने लगा। चेतना खोकर वे यों गिरे मानो सुमेरु पर्वत गिर पड़ा हो। जब वानरों के पति सुग्रीव फिर होश में आए तो उठ खड़े हुए और कुम्भवीर पर पदाघात किया। गुस्से में आकर

महाकोपे कुम्भ-वीर धरे सुग्रीवेरे ❋ दुइजने मल्लयुद्ध, केह नाहि हारे
दुईसिंह युद्धे येन छाड़े सिंहनाद ❋ दुइ वीरे महायुद्ध, नाहि अवसाद
लाफ दिया सुग्रीव ताहार रथे च'ड़े ❋ दुइ मातंगेर दन्त दु-हाते उपाड़े
लइया हस्तीर दन्त कुम्भ-वीरे हानि ❋ दन्താघाते कुम्भेर जर्ज्जर हैल प्राणी
ऊर्द्धते कुम्भेरे तुलि मारिल आछाड़ ❋ भांगिल माथार खुलि, चूर्ण हैल हाड़ ४६
देखिया निकुम्भ-वीर भ्रातार निधन ❋ सुग्रीवे रुषिया जाय करिया तर्ज्जन
निकुम्भेर मुषल से पर्व्वत-सोसर ❋ मुषल मारिते जाय सुग्रीव-उपर
दम्भ करि मुषलेते घन देय पाक ❋ घुराय मुषल येन कुलालेर चाक
विक्रम करिया छुटे संग्रामेर स्थले ❋ प्रबल आगुन येन घृत पेले ज्वले
निकुम्भेर विक्रम देखिया लागे डर ❋ भये पलाइया गेल सुग्रीव-वानर ४७
भयेते सुग्रीव-राजा नहे आगुयान ❋ सुग्रीवेर भंग देखि रोषे हनूमान
सेवक थाकिते तोर राजा-सने रण ❋ तोते मोते जुझि, देखि मरे कोनजन
निकुम्भ कहिछे, बेटा घरपोड़ा शोन ❋ तोरे पेले आर नाहि चाहि अन्यजन
एत यदि दुइजने हैल गालागालि ❋ दुइजने युद्ध बाजे, दोंहे महाबली
लोहार मुषल छिल निकुम्भेर हाते ❋ रुषिया मारिल वीर हनूमान-माथे
हनूमानेर माथा येन वज्रेर समान ❋ माथाय मुषल-गोटा हैल खान-खान

कुम्भवीर सुग्रीव से लिपट गया और दोनों में मल्लयुद्ध होने लगा; उनमें कोई भी हार नहीं मानता था। मानों दोनों ही युद्ध में रत दो सिंह हों, वे बार बार सिंहनाद करने लगे। दोनों वीरों में महायुद्ध होने लगा, उन दोनों में कोई भी थकने वाला नहीं था। मातंग के दो दाँतों को दोनों हाथों से उखाड़ कर सुग्रीव कुंभ के रथ पर चढ़ गया। हाथी के दाँत से उसने कुम्भवीर पर प्रहार किया तो कुम्भवीर की जान साँसत में पड़ गई। कुम्भ को ऊपर उठा कर उसने जमीन पर दे मारा। उसका खोपड़ा टूट गया और हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं ॥ ४६ ॥

भाई का निधन देखकर वीर निकुम्भ परम क्रोध से सुग्रीव की ओर लपका। निकुम्भ के हाथ का मूसल पर्वत के समान है, उसी मूसल से वह सुग्रीव पर प्रहार करने लगा। दंभ से वह मूसल को बार-बार यों घुमाने लगा मानों कुम्हार का चाक हो। संग्राम-भूमि पर वह इस प्रकार पराक्रम के साथ दौड़ा जिस प्रकार प्रबल अग्नि में घी पड़ने पर वह भभक उठता है। निकुम्भ का पराक्रम देखकर भयभीत राजा सुग्रीव वहाँ से भाग गया ॥ ४७ ॥

भय के मारे राजा सुग्रीव आगे बढ़े। सुग्रीव को इस प्रकार हिम्मत हारते देखकर हनुमान क्रोधित हुए। वह कुंभ से बोले सेवक के रहते हुए तू राजा से क्या लड़ेगा। आ जा हम और तू निबट लें, देखा जाय कौन मरता है। निकुम्भ ने कहा, अरे घर जलाने वाले सुन, तू मिल जाय तो मुझे और किसी

हनूमान बले,तोर मुषल गेल तल ❋ मोर घा सह रे बेटा, तबे जानि बल
आपना पासरे कोपे वीर हनूमान ❋ निकुम्भे मारिल चड़ वज्रेर समान
चापड़ खाइया वीर काँपे थरहरि ❋ भंग नाहि देय रणे विक्रमे केशरी
हनूमान-पाने वीर चाहे एक दृष्टि ❋ कोपे हनूमान-बुके मारे बज्रमुष्टि
मुष्ट्याघाते हनूमान हैल अचेतन ❋ हनू कोले करि जाय भेटिते रावण
प्रथम बृहन्दे जाय कोपे करि भर ❋ द्वितीय वृहन्दे परे चले निशाचर
चलि जाय निकुम्भ जे परम-हरिषे ❋ हनूमाने देखिते रमणी सब आसे
निकुम्भेरे नारीगण धन्य धन्य बले ❋ भाल कैले, घरपोड़ा धरिया आनिले
सुग्रीवेरे बन्दी क'रेछिल तव बापे ❋ घरपोड़ा हैल बन्दी तोमार प्रतापे
घरपोड़ा बेटा घर पोड़ाइते मन ❋ समुद्र लङ्घिया आसे, दुर्ज्जय एमन ४८
निकुम्भेर कोले हनू पाइल चेतन ❋ कि बुझि करिबे हनू, भाविछे तखन
सर्व्व-अंग विदारिल आँचड़-कामड़े ❋ दुइ-कान छिंड़िनिल हातेर मोचड़े
परित्राहि डाके वीर, छाड़ छाड़ बले ❋ भय पेये छुँड़े फेले गगन-मण्डले

की आवश्यकता भी नहीं। दोनों में जब इस प्रकार गाली-गलौज हो चुका तो दोनों महाबलियों में युद्ध ठन गया। निकुम्भ के हाथों में लोहे का मूसल था—रोष में आकर उसने हनुमान के सिर पर उसका प्रहार किया। हनुमान का सिर मानों वज्र के समान हो, जिससे टकराकर मूसल टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। हनुमान ने कहा, तेरा मूसल तो बेकार हो गया, अब मेरी चोट सह ले तो समझूँ कि तुझमें बल है। अपने क्रोध को सँभालते हुए वीर हनुमान ने निकुम्भ पर वज्र सा एक झाँपड़ जमाया। झाँपड़ खाकर वह वीर थर-थर काँपने लगा लेकिन पराक्रम में सिंह के समान वह वीर रणक्षेत्र से भागा नहीं। वह वीर हनुमान की ओर एकटक देखता रहा फिर क्रोध से उसने हनुमान के वक्ष पर एक मुक्का मारा। मुष्टि के आघात से हनुमान अचेतन हो गया तो उसको गोद में उठाकर निकुम्भ रावण को भेंट देने चल पड़ा। पहली ड्योढ़ी निकुम्भ ने सक्रोध पार की, दूसरी ड्योढ़ी में वह सहर्ष चलने लगा। हनुमान को देखने के लिए सारी रमणियाँ दौड़ पड़ीं। निकुम्भ को सारी नारियाँ धन्य-धन्य कहने लगीं। वे कहने लगीं अच्छा ही किया कि इस घर जलाने वाले को तुम पकड़ लाए। तुम्हारे बाप ने सुग्रीव को बन्दी बनाया था और तुमने अपने प्रताप से घर जलाने वाले को बन्दी बनाया। यह मुँहजला घर जलाने में ही दक्ष है, ऐसा दुर्जय है कि समुद्र लाँघ आता है॥ ४८॥

निकुम्भ की गोद में ही हनुमान की चेतना लौट आई। तब हनुमान सोचने लगे कि कौन सी बुद्धि लड़ाई जाय। उन्होंने नोच-खसोट कर निकुम्भ का सारा अंग चीर फाड़ डाला। हाथ के मरोड़ से दोनों कान उचार लिये। तब त्राहि-त्राहि मचाता हुआ वीर निकुम्भ चिल्लाने लगा, छोड़ो-छोड़ो। डर

अन्तरीक्षे लाफ दिल, हाते दुइ-कान ❋ निकुम्भेर स्कन्धे चड़े वीर हनूमान
हाते चूल जड़ाये मस्तक छिंड़े फेले ❋ मुण्ड ल'ये जाय हनूमान महाबले
सिंहनाद करि चले पवनेर वेगे ❋ एकलाफे उपनीत श्रीरामेर आगे
निकुम्भेर मुण्ड देखि श्रीरामेर हास ❋ निकुम्भेर विनाश गाहिल कृत्तिवास२४९

मकराक्षेर युद्ध ओ पतन

भग्न-पाइक कहे गिया रावण-गोचर ❋ पड़िल निकुम्भ-कुम्भ, शुन लङ्केश्वर
कुम्भ-निकुम्भेर मृत्यु शुनिया तखन ❋ सिंहासन हैते पड़े राजा दशानन
देव-दानव-गन्धर्व्व करित रणे शंका ❋ कुम्भ ओ निकुम्भ पड़े, शून्य हैल लंका
कुड़िच'क्षे बहे धारा राजा लङ्केश्वर ❋ मकराक्ष-महावीरे आनिल सत्वर
प्रणमिल मकराक्ष रावणेर पाय ❋ देहे तार कुड़ि-हस्त रावण बुलाय
रावण बले, मकराक्ष, तुमि योद्धृपति ❋ नर-वानर मारि राख लंकार बसति
सेइ पुत्र सुजन, कुलेर अलंकार ❋ पितृशत्रु बधि ये शोधये पितृधार
रात्रि-दिन कान्दे शोके तोमार जननी ❋ से रागे रामेर सीता आमि ह'रे आनि
ताहार कारण हैल एत विसंवाद ❋ राम-लक्ष्मणेरे मारि घुचाओ विषाद

कर उसने उसको गगन की ओर फेंका। हाथ में दोनों कान लेकर हनुमान ने अन्तरिक्ष में छलाँग मारी। फिर निकुम्भ के कन्धे पर सवार होकर वीर हनुमान ने निकुम्भ का सिर झोंटों के बल पकड़ा और मस्तक को उचार लिया। मुंड लेकर हनुमान पवन-वेग से सिंहनाद करते हुए चले और एक ही छलाँग में श्रीराम के सम्मुख आ पहुँचे। निकुम्भ का मुंड देखकर श्रीराम प्रसन्न हुए। कृत्तिवास ने निकुम्भ के विनाश का ब्योरा गाया ॥ २४९ ॥

मकराक्ष का युद्ध और पतन

भग्नदूत ने जाकर रावण से कहा, हे लंकेश्वर सुनो, कुंभ और निकुंभ का (रणक्षेत्र में) पतन हुआ। कुंभ-निकुंभ की मृत्यु का समाचार सुनते ही राजा दशानन सिंहासन से गिर पड़े। देव-दानव-गन्धर्व भी जिनसे रण में शंकित रहा करते थे वही कुंभ और निकुंभ नहीं रहे, लंका सूनी हो गई। राजा लंकेश्वर की बीस आँखों से आँसू गिरने लगे। उसने झट महावीर मकराक्ष को बुलवाया। जब मकराक्ष ने आकर रावण के चरणों में प्रणाम किया तो रावण अपने बीस हाथों से उसका बदन सहलाता रहा। रावण ने कहा, मकराक्ष ! तुम अब युद्ध के संचालक हो। नर-वानरों को मार कर लंका की जनता को बचाओ। वही पुत्र सुजन है और वंश की शोभा है जो पिता के शत्रु का वध कर पितृ-ऋण से उऋण होता है। रातों दिन तुम्हारी जननी शोक से रोती थी यह देखकर मारे गुस्से के मैं सीता का हरण कर लाया। इसी के कारण इतना सारा झगड़ा हुआ। अब राम-लक्ष्मण को मार कर इस विषाद को दूर करो।

कर्म करने की दृढ़ता किसी की मानसिक दृढ़ता होती है। अन्य सभी योग्यताएँ इससे भिन्न होती हैं ।। १ ।।

ऊऱ्ऱोराल् उट्ऱपिऩ् ऑल्हामै इव्विरण्डिऩ्
आऱ्ऱेऩ्बर् आय्ऩ्दवर् कोळ् ।। २ ।।

रहकर विमुख असाध्य कर्म से, साध्य कर्म में अविचल भाव—
मतिमानों का कथन—यही दो कर्मनिष्ठ के प्रमुख स्वभाव ।। २ ।।

विद्वानों का कहना है कि विफल होनेवाले कर्म न करना और कर्म के विफल हो जाने पर विचलित न होना—ये दोनों बुद्धिमान् के लक्षण हैं ।। २ ।।

कडैक्कॊट्कच् चॆय्दक्क दाण्मै इडैक्कॊट्किऩ्
ऍट्ऱा विळ्ुमम् तरुम् ।। ३ ।।

कार्य सफल होने से पहले, करो योजना का न प्रकाश;
'भेद बीच में प्रकट' हानिकर, वृथा हुआ पौरुष का ह्रास ।। ३ ।।

पौरुष इसी में है कि जो कार्य किया जाय वह केवल अंत में प्रकाश में आये। यदि बीच में ही वह दूसरों को मालूम हो जाय तो उससे अपार कष्ट होगा। [विळ्ुमम् = कष्ट, दुख] ।। ३ ।।

शॊल्लुदल् यार्क्कुम् ऍळिय अरियवाम्
शॊल्लिय वण्णम् शॆयल् ।। ४ ।।

'इस प्रकार, यह कर डालेंगे' कथन—मनोरथ है आसान,
'कहने से करना दुष्कर है', अविचल-मौन-प्रयास[1] महान् ।। ४ ।।

कहना किसी के लिए भी सरल होता है; किन्तु जिस प्रकार कहा गया उस प्रकार करना कठिन होता है ।। ४ ।।

वीऱॆय्दि माण्डार् विऩैत्तिट्पम् वेन्दऩ् कण्
ऊऱॆय्दि उळ्ळप् पडुम् ।। ५ ।।

दृढ़ सतेज कर्मठ मंत्री के प्रति राजा-रय्यत[2] का चाव,
सदा-सफल उस कर्म-कुशल लोकप्रिय का सर्वत्र प्रभाव ।। ५ ।।

सद्विचारों और उत्तम लक्षणों से युक्त मंत्री की कर्म-निष्ठा से शासक का हित संपन्न होगा; अतः उक्त कर्म-निष्ठा समादृत होगी ।। ५ ।।

ऍण्णिय ऍण्णियाङ् कॆय्दुप ऍण्णियार्
तिण्णिय राहप् पॆऱिऩ् ।। ६ ।।

---

१ विना विचलित हुए चुपचाप प्रयत्न २ राजा-प्रजा।

कर्म-शक्ति में प्रबल, लक्ष्य के प्रति जिनमें दृढ़ता का भाव,
किसी कार्य में कभी न निष्फल, कर्मनिष्ठ का सहज स्वभाव ॥ ६ ॥

यदि किसी कार्य का विचार करनेवाला मंत्री उसके लिए आवश्यक निष्ठा से युक्त हो तो वह योजना के अनुसार कार्य में सफल होगा ॥ ६ ॥

ऊरुवुकण् डॆळ्ळामै वेण्डुम् उरुळ् पॆरुन्तेर्क्
कच्चाणि अऩ्ऩार् उडैत्तु ॥ ७ ॥

तुच्छ धुरी के बल पर ज्यों रथ, त्यों कर्मठ की शक्ति अपार
कर्मशील उपहास्य[1] नहीं, यदि है सामान्य रूप-आकार ॥ ७ ॥

इस विश्व में कर्म-निष्ठायुक्त लोग विद्यमान हैं। उनकी निष्ठा रथ के पहिये की कील के समान महत्वपूर्ण होती है। ऐसे लोग भले ही आकार में छोटे हों, फिर भी उनका निरादर नहीं करना चाहिए ॥ ७ ॥

कलङ्गादु कण्ड विऩैक्कण् तुळङ्गादु
तूक्कङ् कडिन्दु शॆयल् ॥ ८ ॥

सोंच-समझ कर, लक्ष्य साध कर, फिर उस पर अविचल आसीन;
सकल शक्ति से यत्नशील जो, वही व्यक्ति है कर्म-प्रवीन ॥ ८ ॥

जब कोई व्यक्ति विशुद्ध मन से किसी कर्म में प्रवृत्त हो तो उसे अविचलित रहकर पूरी शक्ति के साथ वह कर्म करना होगा ॥ ८ ॥

तुऩ्बम् उऱवरिऩुम् शॆय्ह तुणिवाट्रि
इऩ्बम् पयक्कुम् विऩै ॥ ९ ॥

कार्यकाल में नाना संकट, तजो न साहस और प्रयास;
अविचल पौरुष के प्रतिफल में उदय अन्ततः[2] हर्ष-प्रकाश ॥ ९ ॥

भले ही कोई कार्य करते समय कठिनाई उपस्थित हो, फिर भी अंत में लाभ प्रदान करनेवाले कार्य को साहस के साथ करना होगा ॥ ९ ॥

ऎऩैत्तिट्पम् ऎय्दियक् कण्णुम् विऩैत्तिट्पम्
वेण्डारै वेण्डा दुलहु ॥ १० ॥

कितना ही सशक्त ! यदि उसमें हुआ न कर्मठता का भाव।
सकल शक्ति बेकार, न उसका कभी समादर, कभी प्रभाव ॥ १० ॥

चाहे कोई व्यक्ति कितना ही सशक्त क्यों न हो; फिर भी यदि वह व्यक्ति कर्म-निष्ठा का आग्रही न हो तो इस विश्व में उसका समादर नहीं होगा ॥ १० ॥

---

१ हँसने योग्य २ कार्य पूरा हो जाने पर।

अदिहारम् (अध्याय) ६८

विनैशेयलवहै (कर्म-प्रणाली)

शूऴ्च्चिच मुडिवु तुणिवॆय्दल् अत्तुणिवु
ताऴ्च्चियुळ् तङ्गुदल् तीदु ॥ १ ॥

पूर्ण विचार-विमर्श—पहुँचने पर दृढ़ निर्णय के उपरान्त,
तुरत काम में हाथ न देना, यह पहुँचाता दुःख नितान्त ॥ १ ॥

सोच-समझ और सलाह के बाद किसी कार्य का निर्णय किया जाय; किन्तु निर्णय पर पहुँचते ही कार्य में लग जाना चाहिए। अन्यथा विलम्ब करने से कार्य में विफलता होगी ॥ १ ॥

तूङ्गुह तूङ्गिच् चॆयऱ्पाल तूङ्गऱ्क
तूङ्गादु शॆय्युम् विनै ॥ २ ॥

घड़ी कर्म की नहीं सामने, तब तक समुचित सोच-विचार ।
मौक़े पर तत्काल कर्म बस, शिथिल न होना किसी प्रकार ॥ २ ॥

जिन कामों में [अथवा युद्ध में] अवसर की प्रतीक्षा आवश्यक है, उनमें प्रतीक्षा अथवा विलम्ब उचित है। किन्तु जहाँ तत्काल कर्म की आवश्यकता है, वहाँ शिथिलता सदैव अनुचित है ॥ २ ॥

ऒल्लुम्वा यॆल्लाम् विनै नन्ऱे ऒल्लाक्काल्
शॆल्लुम्वाय् नोक्किच् चॆयल् ॥ ३ ॥

करो विलम्ब न अवसर पाकर, समुचित है तत्काल प्रहार ।
अगर न मौक़ा, रुक कर खोजो अन्य सफलता के आधार ॥ ३ ॥

जहाँ तत्काल चोट करने से काम बनता है, वहाँ अविलम्ब प्रहार करो; अन्यथा प्रहार के बजाय दूसरे साधनों को उपयोग में लाओ ॥ ३ ॥

विनैपहै ऎन्ऱिरण्डिन् ऎच्चम् निनैयुङ्गाल्
तीयॆच्चम् पोलत् तॆऱुम् ॥ ४ ॥

आग अधबुझी पुनः सुलग कर ग़ाफ़िल[1] का करती संहार ।
[विष की जड़] अधमरा शत्रु भी भय का कारण उसी प्रकार ॥ ४ ॥

शत्रु के नाश और किसी कर्म-अभियान को अधूरा छोड़ देना अधबुझी आग की तरह है [जो अवसर पाकर कभी भी प्रचण्ड होकर विनाश कर सकती है।] ॥ ४ ॥

---

१ असावधान, प्रमादी ।

पॊरुळ्करुवि कालम् विऩैइडऩो डैन्दुम्
इरुळ्तीर ऍण्णिच् चॆयल् ॥ ५ ॥

धन, साधन, औ' शक्ति, समय या देश[1]—सभी पर पूर्ण विचार—
कब-कितना माफ़िक़ है अपने?—तभी शत्रु पर करो प्रहार ॥ ५ ॥

किसी कर्म से पहले पाँच बातों को पूरी तौर पर तौल-नाप कर विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है— धन, अन्य साधन, समय (अवसर), कर्म-प्रणाली और स्थान, अपने और शत्रु के ये पाँचों तत्व कितने अनुकूल अथवा प्रतिकूल हैं —सोच लो ॥ ५ ॥

मुडिवुम् इडैयूऱुम् मुट्ऱियाङ् गॆय्दुम्
पडुपयऩुम् पार्त्तुच् चॆयल् ॥ ६ ॥

जोखिम-लाभ; बीच की बाधा; कितना श्रम, कितना परिणाम ?
इन सबका संतुलन समझ कर, उचित हाथ में लेना काम ॥ ६ ॥

कार्य में हाथ डालने से पहले तीन बातों पर पूरा विचार कर लेना जरूरी है। १ कार्य को अन्त तक पहुँचाने में हमें क्या-क्या करना होगा। २ बीच में कौन-कौन विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो सकती हैं। ३ और कार्य की समाप्ति पर मिलनेवाली सफलता का परिमाण कितना है। [कहीं ऐसा तो नहीं है कि 'खोदा पहाड़ और निकली चुहिया'] ॥ ६ ॥

शॆय्विऩै शॆय्वाऩ् शॆयल्मुऱै अव्विऩै
उळ्ळऱिवाऩ् उळ्ळम् कॊळल् ॥ ७ ॥

कोई काम शुरू करने से पहले प्रमुख एक है धर्म।
किसी अनुभवी से समझो उस कारज के सब कौशल-मर्म ॥ ७ ॥

[उपर्युक्त विचार कर लेने के बाद भी] किसी काम में हाथ डालने से पहले, उसमें दक्ष और अनुभवी व्यक्ति से उस कार्य के रहस्यों और कर्म-कौशल को समझ लेना सफलता का मार्ग है ॥ ७ ॥

विऩैयाल् विऩैयाक्किक् कोडल् नऩैहवुळ्
याऩैयाल् याऩैयात् तट्ऱु ॥ ८ ॥

एक पालतू गज[2] के बल से, गज का करते, चतुर, शिकार।
किसी अनुभवी के अनुभव से, सुलभ सफलता उसी प्रकार ॥ ८ ॥

जिस प्रकार एक पालतू हाथी की सहायता से दूसरा प्रबल [जंगली] हाथी पकड़ा जाता है, उसी प्रकार दूसरे के अनुभवों से सहायता लेकर अपने कार्य में सफलता प्राप्त करनी चाहिए ॥ ८ ॥

---

१ स्थान, मौक़ा २ हाथी।

नट्टाक्कु नल्ल शेयलिन् विरैन्ददे
ऑट्टारै ऑट्टिक् कोळल् ॥ ९ ॥

मित्रों को प्रसन्न करने में नहीं ज़रूरी उतना यत्न।
रिपु के रिपुओं को प्रसन्न करना है हितकर अधिक प्रयत्न ॥ ९ ॥

मित्रों को प्रसन्न करने की चेष्टा से ज़्यादा ज़रूरी है कि अपने शत्रु के शत्रुओं की मित्रता प्राप्त करने का यत्न करो ॥ ९ ॥

उरैशिरियार् उळ्नडुङ्गल् अञ्जिक् कुरैपेरिर्
कोळ्वर् पेरियार्प् पणिन्दु ॥ १० ॥

इससे पूर्व कि निबल हमें लख[1], हमला हो, हम भोगें कष्ट।
प्रबल पड़ोसी शासक से कर सन्धि, उसे कर दें संतुष्ट ॥ १० ॥

अपनी दुर्बलता को जान लेने पर, इससे पहले कि अपनी प्रजा और राज्य पराजय का दुःख भोगें, अपने प्रबल शत्रु से [जहाँ तक अपने अनुकूल संभव हो] सन्धि और मित्रता कर लेना प्रथम कर्तव्य है ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६९
तूदु (दौत्य)

अन्बुडैमै आन्र कुडिप्पिरत्तल् वेन्दवाम्
पण्बुडैमै तूदुरैप्पान् पण्बु ॥ १ ॥

स्नेहशील, कुलवन्त, सदा निज प्रभु को रखता है सन्तुष्ट—
राजदूत के योग्य गुणों से सब विधि वही व्यक्ति परिपुष्ट ॥ १ ॥

स्नेहशीलता, कुलीनता और अपने राजा [अथवा स्वामी] को प्रसन्न रखने में कुशलता— ये तीनों सफल राजदूत के गुण हैं ॥ १ ॥

अन्बरि वारायन्द शोल्वन्मै तूदुरैप्पार्क्कु
इन्रि यमैयाद मून्रु ॥ २ ॥

राजनीति में विज्ञ; कुशल वक्ता; वाणी में जो कृतकार्य[2]—
सफल वही है राजदूत, जिसमें ये तीनों गुण अनिवार्य ॥ २ ॥

अपने राजा के प्रति हार्दिक स्नेह, राजनीति में विज्ञता और प्रभावशाली वाक्-पटुता—ये तीनों राजदूतों के अनिवार्य लक्षण हैं ॥ २ ॥

---

१ देखकर २ सफल।

नूलारुळ् नूल्वल्लन् आहुदल् वेलारुळ्
वॆन्ऱि विनैयुरैप्पान् पण्बु ॥ ३ ॥

शत्रु-शिविर में निर्भय रख निज पक्ष, साध ले प्रभु-कल्यान।
वही वस्तुतः राजदूत है विद्वानों में भी विद्वान् ॥ ३ ॥

विद्वानों में विद्वान् और राजनीति-पटु दूत ही विरोधी राजाओं के शस्त्र [और शौर्य] के सामने [निशंक भाव से] अपने स्वामी के पक्ष को रख कर अपना काम सफलतापूर्वक बना लाता है ॥ ३ ॥

अऱिवुरु वारायन्द कल्वियिम् मून्ऱन्
शॆऱिवुडैयान् शॆलुह विनैक्कु ॥ ४ ॥

आकर्षक व्यक्तित्व; सदाशय— अन्तस् में जिसके सद्भाव;
विद्या-बुद्धि बहुमुखी— समझो राजदूत का शुद्ध स्वभाव ॥ ४ ॥

सहज प्रतिभा, आकर्षक व्यक्तित्व, और गहन शिक्षा— इनसे विभूषित जन ही राजदूत के पद पर आसीन होने योग्य हैं ॥ ४ ॥

तॊहच्चॊल्लित् तूवाद नीक्कि नहच्चॊल्लि
नन्ऱि पयप्पदाम् तूदु ॥ ५ ॥

कटुताहीन, कुशलता से, थोड़े में रख कर अपना पक्ष।
काम बना लेता जो, सचमुच वही राज्य का प्रतिनिधि दक्ष ॥ ५ ॥

प्रसन्न मुद्रा, कटुता से परे और संक्षेप में अपने पक्ष को प्रस्तुत कर सकने में कुशल व्यक्ति ही अपने स्वामी का काम बना लाने में सफल होता है। [अपने विपरीत बात होने पर भी आवेश से बचते हुए, प्रसन्न मुद्रा के साथ, संक्षेप में अर्थात् विस्तार के भार से बोझिल न बनाते हुए अपने पक्ष को थोड़े में स्पष्ट रखते हुए काम बना लेना सफल राजदूत का लक्षण है।] ॥ ५ ॥

कट्रुक्कण् णञ्जान् शॆलच्चॊल्लिक् कालत्ताल्
तक्क तऱिवदाम् तूदु ॥ ६ ॥

सूझ-बूझ, मौक़े की कहना; निर्भय; और कुशल विद्वान्;
प्रतिनिधित्व[1] के योग्य वस्तुतः[2] राजदूत वह चतुर सुजान ॥ ६ ॥

ज्ञानवान्, [विरोधी की आँखों से विचलित न होने वाला] निर्भीक, अपनी बात समझा सकने में कुशल, जागरूक और प्रत्युत्पन्नमति (हाज़िरजवाब) व्यक्ति ही सफल प्रतिनिधि हो सकता है ॥ ६ ॥

---

१ प्रतिनिधि-पद २ सत्य में।

कडन्ऱिन्दु कालम् करुदि इडन्ऱिन्दु
ऎण्णि युरैप्पान् दलै ॥ ७ ॥

कौन समय में, किस मौक़े पर, क्या करना है ?— जिसको ज्ञान,
सोच-समझ कर बात बोलना, निपुण दूत की है पहचान ॥ ७ ॥

अपने कर्तव्य को दृष्टि में रखनेवाला (व्यवहार-कुशल), उचित अवसर तथा स्थिति को पहचाननेवाला, और परिपक्व विचारों से युक्त [अर्थात् अपने कथन के मर्म को पूरी तौर पर समझनेवाला] व्यक्ति ही राजदूत होने के योग्य है ॥ ७ ॥

तूय्मै तुणैमै तुणिवुडैमै इम्मून्ऱिन्
वाय्मै वऴिउरैप्पान् पण्बु ॥ ८ ॥

सत्यनिष्ठ; साहसी; सहायक शत्रु-शिविर[1] में कर उत्पन्न,
प्रभु का काम बनाता, प्रभु का वही दूत है गुणसम्पन्न ॥ ८ ॥

निष्कलंक आचरण, विरोधी शिविर में भी सहायक और समर्थक उत्पन्न कर लेना, साहस, इन तीनों से युक्त सत्यनिष्ठा से विभूषित व्यक्ति ही अपने स्वामी का सफल संदेशवाहक और प्रतिनिधि है ॥ ८ ॥

विडुमाट्ऱम् वेन्दर्क्कु उरैप्पान् वडुमाट्ऱम्
वाय्शोरा वन्ऱ्ग णवन् ॥ ९ ॥

उत्पीडन में अविचल रह कर प्रकट न करता अपना मर्म—
ऐसे दृढ़ से शत्रु-शिविर में सफल सदा पायक[2] का धर्म ॥ ९ ॥

दूसरे शासकों के पास अपने स्वामी का संदेश ले जानेवाला दूत इतना दृढ़ हो कि उसकी ज़बान से असावधानी और भय से अपने पक्ष के प्रतिकूल कोई बात न निकल जाय ॥ ९ ॥

इरुदि पयप्पित्तुम् ऎञ्जा दिरैवर्क्कु
उरुदि पयप्पदाम् तूदु ॥ १० ॥

प्रभु का काम बनाने में, प्राणों की भी न जिसे परवाह,
वही साहसी कर सकता है राजदूत का धर्म-निबाह[3] ॥ १० ॥

जान की बाज़ी लगा कर भी अपने प्रभु का काम बना लाना ही निर्भीक और साहसी राजदूत का लक्षण है ॥ १० ॥

---

१ दुश्मन के खेमे में २ दूत, संदेशवाहक ३ धर्म का निर्वाह ।

अदिहारम् (अध्याय) ७०

मन्नरैच् चेर्न्दोळुहल् (नृप-सान्निध्य में आचरण)

अहलादु अणुहादु तीक्काय्वार् पोल्ह
इहल्वेन्दर्च् चेर्न्दोळुहु वार् ॥ १ ॥

अधिक न दूर-समीप अग्नि से, रहकर सुख देता है ताप;
उसी भाँति प्रभु से बरतने पर न कभी होता सन्ताप ॥ १ ॥

[इस अध्याय में, राजा अथवा स्वामी के नित्य-सम्पर्क में रहनेवालों के लिए सावधान और सचेत रहने का पथप्रदर्शन है ।]

जिस प्रकार अग्नि तापते समय अग्नि को त्यागने से शीत का निवारण नहीं होता और अधिक समीप आने पर जल जाने का भय रहता है, उसी न्याय से तरंगी और क्षणिक-बुद्धि राजाओं के सहयोगियों और कर्मचारियों को न तो उनसे अधिक चिपकना चाहिए और न उनसे अधिक दूर रहने में ही कल्याण है ॥ १ ॥

मऩ्ऩर् विऴैब विऴैयामै मऩ्ऩराल्
मऩ्ऩिय आक्कम् तरुम् ॥ २ ॥

प्रभु को प्रिय वस्तुएँ! कामना करो न उनकी; होगा रुष्ट ।
यदि प्रसन्न, तो स्वयं उन्हीं से तुमको कर देगा सन्तुष्ट ॥ २ ॥

स्वामी को जो वस्तुएँ प्रिय हैं, उनकी कभी अभिलाषा न प्रकट करो । [इससे उसके मन में तुम्हारे प्रति ईर्ष्या, अथवा अप्रसन्नता उत्पन्न होगी और तुम्हें उसका कोपभाजन बनना होगा] अन्यथा प्रसन्न रह कर वह स्वतः उन वस्तुओं की तुम पर वर्षा कर सकता है ॥ २ ॥

पोट्ऱिऩ् अरियवै पोट्ऱल् कडुत्तबिऩ्
तेट्ऱुदल् यार्क्कुम् अरिदु ॥ ३ ॥

अविश्वास-सन्देह न प्रभु को उपजे तुम पर—रखना ध्यान !
अवसर दुर्लभ, प्रभु के मन से मिटे कभी वह गहन[1] निशान ॥ ३ ॥

निरापद रहने के लिए, सदैव बचाव रखो, और सचेत रहो कि राजा के मन में तुम्हारे प्रति किसी गुरुतर अपराध का सन्देह उत्पन्न होने का अवसर न आये । क्योंकि एक बार भी सन्देह उत्पन्न हो जाने पर राजा के मन से उसका निर्मूल होना सम्भव न होगा [तुमको इतना अवसर ही वह न देगा कि उसके मन से तुम्हारे विरुद्ध उत्पन्न उस मैल को तुम धो सको] ॥ ३ ॥

---

१ अन्धकार में छिपा हुआ ।

उनसे कुछ करते-धरते न बनी। बादशाह की फ़ुज़ूल-ख़र्चियों की यह हालत थी कि सआदत अली खाँ का जमा किया हुआ सारा रुपया पानी की तरह उड़ गया और मुल्क की आमदनी महल के मसारिफ़ के लिए किफ़ायत ही न करती थी। इस पर तुर्रा यह कि बादशाह और उनकी माँ, ग़ाज़ीउद्दीन हैदर की ख़ास महल में झगड़े पैदा हुए। वह मुन्नाजान को बादशाह का बेटा बताती थीं और बादशाह इसको अपना बेटा तस्लीम न करते थे। इन बातों ने मुल्क की ऐसी हालत कर दी थी कि मालूम होता, हुक्मरानों में हुकूमत करने और मुल्क के सम्हालने की मुतलक़ सलाहीयत नहीं है।

साहब रेज़ीडेण्ट और गवर्नर जनरल हिन्द ने बार-बार समझाया, डराया, धमकाया, अंजाम से मुत्तला किया और बराबर कान खोलते रहे। मगर यहाँ किसी के कान पर जूँ न रेंगी। नसीरउद्दीन हैदर में, औरतों में रहते-रहते इस दरजा ज़नाना-मिज़ाजी पैदा हो गई थी कि औरतों की सी बातें करते और औरतों ही का सा लिबास पहिनते। ज़नाना-मिज़ाजी के साथ मज़हबी अक़ीदत ने यह शान पैदा कर दी कि अइम्मअे असना-अशर[1] की फ़रज़ी बीवियाँ (अछूतियाँ) और उनकी विलादत की तक़रीबें, जो उनकी माँ ने क़ायम की थीं, उनको और ज़ियादः तरक़्क़ी दी; यहाँ तक कि विलादतें अइम्मः की तक़रीबों में ख़ुद हामला औरत बनकर ज़च्चाख़ाने में बैठते, चेहरे और हरकात से वज़ेहमल की तकलीफ़ ज़ाहिर करते और फिर ख़ुद एक फ़रज़ी बच्चा जनते, जिसके लिए विलादत, छटी और नहान के सामान बिलकुल अस्ल के मुताबिक़ किये जाते। यह तक़रीबें इस क़दर ज़ियादः थीं कि साल-भर बादशाह को इन्हीं से फ़ुर्सत न मिलती, सल्तनत की तरफ़ कौन तवज्जुः करता।

दरबारे अवध और सरकारे अंग्रेज़ी के तअल्लुक़ात देखने से मालूम होता है कि अगर गवर्नर जनरल और रेज़ीडेण्टों की नज़रें इनायत न होतीं और इंग्लिस्तान का जो बोर्ड ईस्ट-इंडिया-कम्पनी का निगराँ था, कम्पनी को रोके-थामे न रहता तो इन्तज़ामे सल्तनत की कार्रवाई इसी ज़माने में हो गई होती। मगर इस तिफ़्लानः मिज़ाजी के दरबार की ज़िन्दगी अभी बाक़ी थी। अंग्रेज़ मुल्क के लेने का इरादा करके रह गये।

नसीरउद्दीन हैदर की निस्बत लखनऊ के मुअतबर पुराने लोगों का बयान है कि इस ज़नाना-मिज़ाजी और इन तिफ़्लानः हरकतों के साथ निहायत ज़ालिम भी थे। लेकिन चूँकि सारी ज़िन्दगी औरतों में बसर होती थी इसलिए उनके मज़ालिम का शिकार भी ज़ियादःतर औरतें ही होतीं। बीसियों औरतों को अदना क़ुसूर और मामूली बदगुमानी पर दीवारों में चुनवा दिया। कहते हैं कि राह चलते किसी मर्द को किसी औरत के सीने पर हाथ रखे देख लिया था, फ़ौरन औरत की छातियाँ और मर्द के हाथ कटवा डाले।

---

१ चाचा की प्रमाणित बहुत शरीफ़।

आखिर दस बरस की बेएतदालियों[1] के बाद जबकि अन्दर-बाहर के तमाम अह्ले-दरबार ज़िन्दगी से आजिज़ आ गये थे, बादशाह ख़ुद अपने दोस्तों और अज़ीज़ों के हाथ का शिकार बने और किसी ने ज़हर देकर सन् १२६६ मुहम्मदी (सन् १८३७ ई०) में क़िस्सः तमाम कर दिया। नसीरउद्दीन हैदर ला-वलद मरे थे। मुन्नाजान को ग़ाजीउद्दीन हैदर की बेगम ने हमेशा अपना पोता और सच्चा वारिसे-सलतनत बनाकर पेश किया मगर ग़ाजीउद्दीन हैदर और नसीरउद्दीन हैदर दोनों ने उनके नस्ले-शाही होने से इन्कार किया था। इसी बिना पर गवर्नमेन्ट अंग्रेज़ी ने नव्वाब सआदत अली ख़ाँ मरहूम के बेटे नसीरुद्दौलः मुहम्मद अली ख़ाँ की तख़्त-नशीनी का पहले से बन्दोबस्त कर लिया था। मगर बेगम साहिबा ने न माना। मुन्नाजान को लेकर लाल बारहदरी याने तख़्तगाह में आ गईं।

रेज़ीडेण्ट ने हज़ार रोका और समझाया, मगर एक न सुनी और ज़बरदस्ती मुन्नाजान को तख़्त पर बैठा दिया, जिन्होंने तख़्त पर क़दम रखते ही नज़रें लीं और अपने दुश्मनों से फ़ौरन् बदला लेना भी शुरू कर दिया। बहुतों के घर लुटवाए, बाज़ को गिरफ़्तार कर लिया, बाज़ क़त्ल हुए और शहर में एक हड़बोंग मच गया।

साहब रेज़ीडेण्ट और उनके असिस्टेण्ट फ़ौरन् दरबार में पहुँचे। बादशाह बेगम को समझाया कि मुन्नाजान वारिसे-सल्तनत नहीं हो सकते और इसमें आप को हरगिज़ कामयाबी न होगी। फिर लाट साहब का तहरीरी फ़रमान दिखाया और कहा—"बेहतर यही है कि मुन्नाजान तख़्त को ख़ाली कर दें और नसीरुद्दौलः की तख़्तनशीनी अमल में आ जाए"। मगर किसी ने समाअत[2] न की, बल्कि किसी ने असिस्टेण्ट रेज़ीडेण्ट पर हमलः किया, जिससे उनका चेहरा ख़ून-आलूद हो गया।

रेज़ीडेण्ट ने मँडयावँ से अंग्रेज़ी फ़ौज पहले ही से बुलवा ली थी, और उसने तख़्तगाह के सामने तोपें लगा दी थीं और सिपाही सफ़ें बाँधे खड़े थे। मजबूरन् साहबे-आलीशान ने घड़ी हाथ में ली और कहा—"दस मिनट की मुहलत दी जाती है, इस ज़माने के अन्दर अगर मुन्नाजान तख़्त से न उतर गये तो जबरियः कार्रवाई की जायगी। इसका भी किसी ने ख़याल न किया। हालाँकि रेज़ीडेण्ट बार-बार कहते जाते थे कि अब पाँच मिनट बाक़ी हैं, अब दो ही मिनट रह गए और अब देखिए पूरा एक मिनट भी नहीं।

इन तंबीहों[3] का किसी ने ख़याल न किया और यकायक तोपों ने गर्राबें मारना शुरू कीं। आनन्-फ़ानन् में तीस-चालीस आदमी गिर गए। दरबारी बदहवासी के साथ गिरते-पड़ते भागे। जो तायफ़ा मुजरा कर रहा था, उसमें से भी कई आदमी ज़ख़्मी हुए। शीशएआलात झनाझन टूट कर गिरने लगे। जब कई वफ़ादार बहादुर, जो सीनें-सिपर थे, मारे जा चुके तो मुन्नाजान ने भी तख़्त से गिरकर भागने का क़स्द किया,

---

१ असंयम या बद-परहेज़गारी २ सुनवाई ३ चेतावनियों।

मगर पकड़ लिये गये। ग़रज़ बेगम साहब और इन्हें, दोनों को अंग्रेज़ों ने गिरफ़्तार कर लिया। साथ ही नसीरुद्दौलः की तख्तनशीनी अमल में आई। जो मुहम्मदअली शाह के लक़ब से बादशाहे अवध क़रार पाये। और मुन्नाजान और उनकी दादी सख्त हिरासत में लखनऊ से कानपूर और कानपूर से क़िलअे चुनारगढ़ में भेज दिये गये और दो हज़ार चार सौ रुपये माहवार उनकी तनख्वाह लखनऊ के ख़ज़ाने से मुक़र्रर कर दी गई।

मुहम्मदअली शाह की उम्र तख्तनशीनी के वक़्त तिरसठ बरस की थी, बूढ़े तजुर्बेकार थे। ज़माने के सर्द व गर्म और दरबार की तिफ़लानःमिज़ाजियाँ[1] देखते रहे थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि नव्वाब सआदतअली ख़ाँ के बेटे थे और उनकी आँखें देखे हुए थे। इन्होंने बहुत सँभलकर काम किया। किफ़ायत-शआरी के उसूल[2] जारी किये, और जहाँ तक बना इन्तिज़ाम को सँभालने की कोशिश की। मगर उम्र ज़ियादः आ चुकी थी और क़वा[3] जवाब देते जाते थे। तख्त पर बैठते ही उन्होंने हकीम मेंहदी को फ़र्रुख़ाबाद से बुलवाकर खिलअते वज़ारत दिया, मगर चन्द ही रोज़ बाद वह मर गए। तब ज़हीरउद्दौलः को खिलअते वज़ारत हुआ। दो-तीन महीने बाद वह भी दुनिया से रुख़्सत हुए और मुनव्वरउद्दौलः वज़ीर क़रार पाए। जिन्होंने दो-चार महीने के बाद ही इसतअफ़ा (इस्तीफ़ा) दे दिया और करबलाये मुअल्ला चले गए। फिर अश्रफ़उद्दौलः मुहम्मद इब्राहीम ख़ाँ वज़ीर क़रार पाए जो औरों के देखते ज़ी-होश[4] और मतीन[5] थे।

मुहम्मदअली शाह की तख्तनशीनी पर गवर्नमेण्ट अंग्रेज़ी और सल्तनते अवध में एक नया मुआहिदः हुआ, जिसकी रू से सरकार अंग्रेज़ी ने जो फ़ौज अवध की निगरानी के लिए रखी थी इसमें मुअतद्दिबः[6] इज़ाफ़ः[7] हुआ और ईस्ट-इंडिया कंपनी की गवर्नमेंट को यह इख्तियार हासिल हुआ कि सारी क़लम-रवे-अवध[8] या उसके जिस इलाक़े में बदनज़्मी देखे उसे जब तक चाहे अपने ज़ेरे-इन्तिज़ाम रक्खे। बादशाह ने नागवारी के साथ इस अहदनामे पर दस्तख़त किये और जहाँ तक बना, मुल्क की इस्लाह[9] करने लगे।

तख्तनशीनी के दूसरे ही बरस इन्होंने अपना मशहूर इमामबाड़ा हुसैनाबाद और उसके क़रीब एक आलीशान मस्जिद तामीर कराना शुरू की, जिसकी बाबत इहतिमाम किया गया कि देहली की जामा मस्जिद से रौनक़ और वुसअत में बढ़ जाये।

उन दिनों लखनऊ की आबादी व रौनक़ इस क़दर तरक़्क़ी कर गई थी और इस कसरत से आदमी उसके सवाद में आबाद थे कि इसे हिन्दोस्तान का 'बाबुल' कहना बेजा न था। वाक़ई यह शहर हर हैसियत से उस अहद का ज़िन्दः बाबुल था।

---

१ बचपन की चोचलेबाज़ी २ सिद्धान्त ३ शक्तियाँ ४ चेतना रखनेवाले ५ बुद्धिमान ६ तादादी ७ वृद्धि ८ अवध राज्य ९ सुधार, संशोधन।

इस मुशाबहत[१] को शायद अंग्रेज़ों या किसी और दरबारी से सुनकर मुहम्मदअली शाह ने इरादा किया कि लखनऊ को पूरा-पूरा बाबुल बना दें और अपनी एक ऐसी यादगार क़ायम कर दें जो उनके नाम को तमाम-शाहाने अवध से ज़ियादः बलन्दी पर ला दिखाए। इन्होंने बाबुल के मीनार या वहाँ के हवाई बाग़ की तरह की एक इमारत हुसैनाबाद से क़रीब और मौजूदः घंटाघर के पास तामीर कराना शुरू की, जिसमें महराबों के मुद्‌वर[२] हलक़े पर दूसरा हलक़ा और दूसरे हलक़े पर तीसरा हलक़ा, ग़रज़ यूँ ही तले ऊपर क़ायम होते चले जाते थे। इरादा था कि यूँ ही सात मंज़िलों तक उसे बलन्द करके, एक इतना बड़ा और ऊँचा बुर्ज बना दिया जाए जो दुनिया भर में लाजवाब हो और इसके ऊपर से सारे लखनऊ और इसके गिर्द की फ़िज़ा नज़र आए। यह इमारत अगर पूरी बन जाती तो यक़ीनन् लाजवाब और अजीब व ग़रीब होती। इसका नाम 'सतखंडा' क़रार दिया गया था और बड़े इहतिमाम से बन रही थी। मगर पाँच ही मंज़िलें बनने पाई थीं कि मुहम्मदअली शाह ने सन् १२७१ मुहम्मदी (सन् १८४२ ई०) में सफ़रे आख़िरत किया।

मुहम्मदअली शाह ने अपने मुख़्तसर ज़माने में, बग़ैर इसके कि अन्दरूनी झगड़े पैदा हों, या मुल्क में बदनज़्मी की फ़रियाद बलन्द हो, लखनऊ को निहायत ही ख़ूबसूरत शहर बना दिया। हुसैनाबाद के फाटक से रूमी दरवाज़े तक दरिया (के) किनारे-किनारे एक सड़क निकाली जो चौक कहलाती थी। इस सड़क पर बावजूद दो-तरफ़ः आलीशान मकानों के एक तरफ़ रूमी दरवाज़ा, आसफ़उद्दौलः का इमामबाड़ा और उसकी मस्जिद थी, दूसरी तरफ़ सतखंडा और हुसैनाबाद का फाटक था। इस नए इमामबाड़े की मुख़्तलिफ़ सरबए-फ़लक[३] इमारतें थीं और इनके पहलू में जामा मस्जिद वाक़िअ थी, इन सब इमारतों ने मिलकर दोनों जानिब एक ऐसा ख़ुशनुमा और नज़र-फ़रेब मंज़र पैदा कर दिया था जो दुनिया के तमाम मशहूर व ख़ुश-सवाद मनाज़िर पर चश्मकज़नी[४] करता था और अब भी गोकि दरमियान में बाशिन्दगाने शहर के जितने मकानात वाक़िअ थे सब खुद गये, मगर दुनिया का एक बेहतरीन मंज़र तसव्वुर किया जाता है।

सल्तनत मटियामेटे की ओर

मुहम्मदअली शाह के बाद अमजदअली शाह 'अरीका-आराई[५]-सरीरे-शहरयारी' हुए'। मुहम्मदअली शाह ने कोशिश की थी कि वली-अहदे सल्तनत की तालीम आला दरजे की हो, चुनाँचिः उन्हें उलमा व फ़ुज़ला की सुहबत में रखा। नतीजा

१ समानता २ गोल ३ गगन-चुम्बी ४ ऐनक का काम ५ राज्य-सिंहासन-आरूढ़।

यह हुआ कि अमजदअली शाह बजाय इसके कि तालीम में कोई नुमायाँ तरक़्क़ी करें, अख़लाक़ व आदात के लिहाज से एक सिक़: मौलवी बन गए। इनानें-हुकूमत[1] हाथ में लेने के बाद उनका जो कुछ हौसला था, यह था कि वह और उनके साथ सारी रिआया, जनाबें क़िब्ला व काबा की हलक़ा-ब-गोशें-इरादत[2] बन जाय। लेकिन ज़ाहिर है कि उलमायें दीन व मुक़्तदायानें-मिल्लत[3] को पालिटिक्स से किसी क़िस्म का वास्तः नहीं हो सकता। वह न मुदब्बरें सल्तनत हो सकते हैं और न स्टेट्समैन। उनसे जो कुछ हिदायत मिल सकती थी, यह थी कि सय्यदों की ख़िदमत-गुज़ारी की जाए और सल्तनत का रुपया, मोमिनीन की अंआनत[4] व दस्तगीरी में सर्फ़ हो। और यह काम भी इरादतें कैश और मुहतात[5] परहेज़गार, फ़रमाँ-रवायें अवध अमजद-अली शाह की नज़र में उसी वक़्त क़ाबिलें इत्मीनान हो सकता था, जब ख़ुद मुजतहिदुल्-असर के मुबारक हाथों से अंजाम पाए। चुनाँचिः मुल्क की आमदनी में से लाखों रुपया ज़कात के नाम से इनकी नज़र किया जाता और इसके अलावा और भी बहुत सी ख़ैरात की रक़में इन्हीं के हाथ में जातीं।

अमजदअली शाह के लिए तक़्वे, तहारत का ख़याल मर्ज़ बन गया था। इन्हें अपने ख़याल की पाबन्दीए शरअ से इतनी फ़ुर्सत ही न मिलती थी कि नज़्म व नस्क़ें[6] मम्लुकत[7] की तरफ़ तवज्जु: करें। जिसका यह लाज़िमी नतीजा था कि मुहम्मदअली शाह ने अपनी तजुर्बाकारी व बेदार-मग़्ज़ी से जो कुछ इन्तिज़ामात किए थे, सब दरहम व बरहम[8] हो गए और यह हालत हो गई कि (क़ाज़ी मुहम्मद सादिक़ ख़ाँ 'अख़्तर' के बयान के मुताबिक़) "तमाम अम्माल बदकार व बद-बातिन और ख़ुदग़रज़ थे। रिआया तबाह थी, ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर था। ज़ालिम व मुजरिम को सज़ा न मिलती। ख़ज़ानः ख़ाली था। रिश्वत-सतानी की गर्म-बाज़ारी थी और जो फ़ित्ने पैदा होते, किसी के मिटाए न मिट सकते"।

लेकिन इस इत्तिक़ा की ख़ामोशी और तमद्दुनी[9] ग़फ़लत व बे-परवाई पर भी इन्होंने मुहल्ल-ए हज़रतगंज आबाद किया जो आज लखनऊ में तमाम मुहल्लों से ज़ियादः साफ़ सुथरा, ख़ूब आबाद, निहायत ख़ूबसूरत, दौलतमंद ताजिरों का आलातरीन बाज़ार है और सिविल लाइन का सबसे ज़ियादः बारौनक़ हिस्सा है। इन्होंने लखनऊ से कानपूर तक ब-राहें-रास्त एक पुख़्तः सड़क बनवाई। उनके अहद में सबसे बड़ा काम यह हुआ कि लोहे के पुल की इमारत बनकर तैयार हो गई। इस पुल की तामीर का वाक़िअः यह है कि इसके अजज़ा और पुरज़े ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने इंग्लिस्तान से मँगवाए थे। मगर वह पुरज़े जब तक लखनऊ में पहुँचें, बादशाह रह-गराय आलमें

---

१ शासन की बागडोर २ विचारानुकूल ३ धार्मिक आचार्य ४ सेवा-सुश्रूषा ५ हर बात का ध्यान रखनेवाले ६ प्रबन्ध और व्यवस्था ७ राज्य, सल्तनत ८ तितर-बितर ९ नागरिकता।

जा-ब-दाँ हो चुके थे। नसीर-उद्दीन हैदर के अहद में जब वह पुरज़े विलायत से आए तो उन्होंने अपने दरबार के इंजीनियर मिस्टर संकलियर को उन पुरज़ों को जोड़ने और पुल को बनाकर खड़ा कर देने का ठेका दिया, और हुक्म दिया कि वह पुरज़े रेज़ीडेण्सी के सामने पार दरिया के किनारे डाल दिये जाएँ। जिस मुक़ाम पर पुल के यह आहनी[1] पुरज़े डाले गए थे, इस जगह का पता देने के लिये आज वहीं एक घाट और शिवाला क़ायम है। मिस्टर संकलियर ने दरिया के अन्दर सुतून[2] क़ायम करने के लिए गहरे कुँवें खुदवाये और सुतूनों की जुड़ाई भी कर लाए मगर इसके बाद उनसे कुछ करते-धरते न बनी और पुल की तकमील[3] में नाकामी हुई। मुहम्मदअली शाह के ज़माने में यह पुल ना-तमाम पड़ा रहा। मगर अमजदअली शाह ने अपने अहद में इसकी जानिब तवज्जुः की और पुल बनकर तैयार हो गया। लेकिन जो लोहे का पुल आज कल क़ायम है, वह अमजदअली शाह के ज़माने का पुल नहीं है। वह एक हैंगिग-ब्रिज यानी लटकनेवाला पुल था, जिसका सारा बार चार बलन्द और ज़बरदस्त आहनी खम्बों पर लटक रहा था। अंग्रेज़ी ज़माने में जब इसके पुरज़े ज़ंग-आलूद[4] होकर कमज़ोर हुए और उस पर आम आमदो-रफ़्त में ख़तरः नज़र आया तो उसे मुनहदिम[5] करा के इसकी जगह दूसरा आहनी पुल क़ायम किया गया और वही पुल इस वक़्त मौजूद है।

अमजदअली शाह ही के ज़माने में उनके वज़ीर, अमीनउद्दौलः ने अमीनाबाद आबाद किया जिसकी आबादी व रौनक़ आजकल रोज़-अफ़ज़ूँ तरक़्क़ी कर रही है। अमजदअली शाह ने अपने ज़माने में अगरचिः कुछ नहीं किया और न अपने शौक़ से कोई ऐसी इमारत बनवाई जो आज कल उनकी यादगार हो, मगर शायद अपने इत्तिक़ा व परहेज़गारी के सिले में इन्हें यह क़ुदरती नामवरी हासिल हो गई, कि लखनऊ के आज कल के दो सबसे ज़ियादः मशहूर, सबसे ज़ियादः आबाद, सबसे ज़ियादः बारौनक़ और सब से ज़ियादः दौलतमंद मुहल्ले अमीनाबाद और हज़रतगंज उन्हीं के अहद की यादगार हैं।

आख़िर ज़माने ने उनके दौर का वर्क़ भी उल्टा और सन् १२७७ मुहम्मदी (सन् १८४८ ई०) में जब कि उम्र अड़तालीस बरस से कुछ ही दिन ज़ियादः थी, मर्ज़े-सरतान[6] में मुब्तला होकर दुनिया से रुख़सत हो गए और अपने आबाद किए हुए मुहल्ले हज़रतगंज में मेंडूख़ाँ रिसालदार की छावनी के अन्दर दफ़्न हुए। इनका इमामबाड़ा जिसमें वह मदफ़ून हैं हज़रतगंज के मग़रिबी हिस्से में लबे-सड़क मौजूद है, जिसकी इमारत उनकी वफ़ात के बाद वाजिदअली शाह ने दस लाख रुपया सर्फ़ करके बनवाई थी। यह इमामबाड़ा हुसैनाबाद की एक नाक़िस नक़ल है और अगर हुसैनाबाद की तरह इसमें भी रौशनी होती तो मुहर्रम में लखनऊ का मशरिक़ी हिस्सा

१ लोहे का २ खम्बा ३ पूरा होना ४ मुरचा लगा हुआ ५ ढाया हुआ ६ कैंसर।

भी आलमे-नूर बन जाया करता। अगरचिः इसके लिए कोई वसीकः[1] नहीं मुअय्यन[2] है, लेकिन इसकी आमदनी भी कम नहीं। इहाते की इमारत के बेरूनी रुख की दुकानों में बहुत से अच्छे-अच्छे ताजिरों की दुकाने हैं और अन्दरूनी इमारतों में बहुत से यूरेशियन वग़ैरः रहते हैं, जिनसे किराए की मुअतद्दिबः[3] रक़म वसूल होती है। मगर किराया वसूल करनेवालों का यह भी एहसान है जो मुहर्रम में खास क़ब्र और इमामबाड़े में चन्द चिराग़ रौशन कर दिया करते हैं।

अब अमजदअली शाह के बड़े बेटे वाजिदअली शाह तख़्ते सल्तनत पर जल्वए अफ़रोज़ हुए। उनका ज़माना इस मशरिक़ी दरबार की तारीख का आखिरी वर्क़ और इसी मरसियें-पास्ताँ[4] का आखिरी बन्द है। चूँकि इन्तिज़ाअ[5] सल्तनत इन्हीं के अहद में हुआ, इसलिए तमाम अहले-अलर्राय के हदफ़े-सहाम[6] और निशाने मलामत वही बन गए और क़रीब-क़रीब तस्लीम कर लिया गया कि ज़वाले सल्तनत के बाअस वह थे। लेकिन जिस ज़माने में उनकी सल्तनत का खात्मः हुआ है, उन दिनों हिन्दोस्तान की तमाम वतनी क़ुव्वतें टूट रही थीं और बुरी-भली सब तरह की क़दीम हुकूमतें दुनिया से मिटती जाती थीं। पंजाब में सिक्खों का और दकन में मरहठों का दफ़्तर क्यों उल्टा, जो बहादुर और ज़बरदस्त और होशियार माने जाते हैं? देहली में मुग़ल शहनशाही का और बंगाला में नव्वाब नाज़िमें-बंगाला का इस्तीसाल[7] क्यों हुआ? हालाँकि इनमें इतनी तिफ़्लानःमिज़ाजी[8] न थी जितनी कि लखनऊ के अरीकएआरा[9] सल्तनत में बताई जाती है। मज़्कूरा चारों दरबारों में कोई वाजिदअली शाह न था। हालाँकि इनकी तबाही लखनऊ की तबाही से कम न थी।

अस्ल यह है कि उस अहद में इधर अहले हिन्द की ग़फ़लत और जहालत का पैमाना छलकने के क़रीब पहुँच गया था और उधर दौलते बरतानिया की क़ुव्वत और ब्रिटिश क़ौम की आक़बतें-अन्देशी,[10] क़ाबिलीयत, जफ़ाकशी, अपनी कोशिशों और अपनी आला तहज़ीब या शाइस्तगी[11] का समरः[12] पाने की रोज़-ब-रोज़ मुस्तहक़ साबित होती जाती थी। ग़ैरमुमकिन था कि दानायाने फ़िरंग[13] की ज़हानत व तिब्बाई, ख़ुश-तदबीरी व बाज़ाब्तगी, हिन्दुस्तान की जहालत व ख़ुदफ़रामोशी पर फ़तह न पाती। ज़माने ने सारी दुनिया में तमद्दुन का नया रंग इख्तियार किया था और पुकार-पुकार कर हर एक क़ौम से कह रहा था कि जो इस मज़ाक़ में मेरा साथ न देगा, मिट जायेगा। ज़माने के इस ढिंढोरे की आवाज़ हिन्दोस्तान में किसी ने न सुनी और सब मिट गये। इन्हीं मिटनेवालों में अवध की सल्तनत भी थी, जिसके ज़वाल[14] का बार ग़रीब वाजिदअली शाह पर डाल देना मुहक़्क़िक़ाना[15]-मज़ाक़[16] के ख़िलाफ़ है।

---

१ ऐसे धन से आया हुआ सूद २ नियत ३ तादादी ४ पुराने मर्सिये का ५ पतन ६ तीर की चोट ७ विनाश ८ बचकाना स्वभाव ९ सजानेवाले शासन १० परिणाम-दर्शिता ११ सभ्यता १२ फल, लाभ १३ बुद्धिमान फ़िरंगी १४ अवनति १५ वास्तविकता की जाँच करनेवाले १६ योग्यता।

पाबन्दे-शरअ बाप ने वाजिदअली शाह को भी उलमा की सुहबत में रखकर अपना सा बनाना चाहा था और यह रंग एक हद तक वाजिदअली शाह पर चढ़ा भी, जो इन्क़ज़ाए[१]-उम्र के साथ ज़ियादः खुलता गया। मगर अमजदअली शाह का इसमें कुछ ज़ोर न चला कि वारिसे सल्तनत फ़र्ज़न्द का फ़ितरी रुजहान ऐयाशी और फ़ुनूने[२]-तरब[३] व निशात[४] की तरफ़ था। अगरचिः बाप की ताकीद से पढ़ने-लिखने की तालीम भी अच्छी थी लेकिन मूसीक़ी[५] का शौक़ ग़ालिब था। वली-अहदी[६] ही में अपने ज़ाती शौक़ से उन्होंने बाप के मंशा के ख़िलाफ़ गवैयों और ढारियों को अपनी सुहबत में रक्खा, गाना बजाना सीखा, आवारः औरतों और डोम-ढारियों से रब्त व ज़ब्त बढ़ाया और अंजाम यह हुआ कि जो लुत्फ़ इन्हें हसीन औरतों और गवैयों की सुहबत में आता, इल्मी-मज़ाक़[७] की मुहज़्ज़ब[८] सुहबतों में न आता। बाप के ख़िलाफ़ इन्हें इमारत का शौक़ था और वलीअहदी ही में इन्होंने ख़ास अपनी महफ़िले-तरब[९] और ऐश के लिए एक पुर-फ़िज़ा बाग़ और इसमें दो एक मुख़्तसर ख़ूबसूरत और पुरतकल्लुफ़ मकान बनवाये। अलीनक़ी ख़ाँ, जिन्हें तख़्त पर बैठते ही ख़िलअते वज़ारत अता किया, इनसे ज़मानए वलीअहदी में एक रंडी के घर पर मुलाक़ात हुई। उनकी जवानानए शोख़मिज़ाजी ने, मिज़ाज में दर-ख़ोर[१०] पैदा किया और जब मज़्कूरएबाला बाग़ और इमारत उनके इहतिमाम में तामीर होकर पसन्द आये तो समझ लिया गया कि वज़ारत और इन्तज़ामे मम्लुकत[११] के लिए उनसे ज़ियादः मौज़ूँ कोई शख़्स नहीं है।

वाजिदअली शाह की सल्तनत का आग़ाज़[१२] तो इस उन्वान से हुआ कि नौजवान बाँके बादशाह को अदालते-गुस्तरी[१३] और इस्लाहे फ़ौज की तरफ़ ग़ैर मामूली तवज्जुः थी। सवारी में आगे-आगे दो नुक़रई[१४] सन्दूक़ चलते। जिस किसी को कुछ शिकायत होती, अर्ज़ी लिखकर इनमें डाल देता। कुंजी ख़ुद बादशाह के पास रहती। महल में पहुँचकर हुज़ूर उन अर्ज़ियों को निकालते और अपने हाथ से अहकाम तहरीर फ़रमाते। इस तरह कई नये रिसाले और कई पल्टनें भरती हुईं। रिसालों के नाम बादशाह ने अपनी मुंशियाना तिब्बाई से बाँका, तिरछा, घनघोर रक्खे और पल्टनों के नाम 'अख़्तरी', 'नादरी' रखे गये। ख़ुद बदौलत बनफ़्स नफ़ीस घोड़े पर सवार होकर जाते और घंटों धूप में खड़े होकर उनकी क़वायद और फ़ुनूने जंग में इनकी मश्शाक़ी[१५] देखते और ख़ुश हो-होकर, बा-कमाल सिपाहियों को इनआम व इकराम से सरफ़राज़ फ़रमाते। फ़ौजी क़वायद के लिए ख़ुद ही फ़ारसी-इस्तिलाहात[१६] और कलमात मुक़र्रर किये।

---

१ उम्र की ढलान २ फ़न ३ मनोरंजन ४ सुख भोग ५ संगीत शास्त्र ६ युवराज-पद ७ विद्या-सम्बन्धी रुचि ८ शिष्ट, तहज़ीबदार ९ सभा की रंगरेलियाँ १० दरवाज़ा घूमने वाला ११ सल्तनत १२ आरम्भ, उठान १३ न्याय-व्यवस्था १४ चाँदी के १५ अभ्यास, दक्षता १६ परिभाषाएँ।

व वस्सैनल्‌अिन्‌सान बिवालिदैहि हुस्नन् ...

और हमने इन्सान को नेकी करने की वसिय्यत की उसके वालदैन के बारे में। [सू० अन्कबूति, रु० १ आ० ८]

व क़ज़ा रब्बुक अल्ला तअ्बुदू अिल्ला अिय्याहु व बिल्वालिदैनि अिह्‌सानन् , अिम्मा यब्लुग़न्न अिन्दकल्किबर अहदुहुमा औ किलाहुमा फ़ला तक़ुल्लहुमा अुफ़्फ़िव्वला तन्हर् हुमा व क़ुल्लहुमा क़ौलन् करीमन् (२३) वख़्फ़िज़् लहुमा जनाहज़्ज़ुल्लि मिनर्रह्‌मति व क़ुर्रब्बिर्‌हम्‌हुमा कमा रब्बयानी सग़ीरन् , (२४)

और तुम्हारे रब ने फ़ैसला किया है, कि सिवाये ख़ुदा के किसी की अिबादत न करो और वालदैन के साथ भलाई करो। अगर उनमें एक या दोनों बूढे हो जायें तो उनको उफ़ न कहो। और उनको मत झिड़को और उनसे अच्छी बात कहो। और अपने नर्मी के बाज़ू उनके लिए रहम के साथ झुकाओ। और कहो ऐ परवरदिगार ! इन पर रहम कर, जैसा उन्होंने बचपन में हमें पाला है।

[सू० बनी इस्राईल, रु० ३ आ० २३-२४]

व वस्सैनल्‌अिन्‌सान बिवालिदैहि , हमलत्हु अुम्मुहु वह्नन् अला वह्निंव्व फ़िसालुहु फ़ी आमैनि अनिश्कुर्‌ली व लिवालिदैक ...

और हमने इन्सान को नेकी करने की वसिय्यत की उसके वालदैन के बारे में। उसकी माँ ने उसके बोझ को कम्ज़ोरी पर कम्ज़ोरी बरदाश्त करते हुए उठाया और दो बरस में उसका दूध छुड़ाया इसलिए कि मेरा शुक्र करो और अपने वालदैन के शुक्रगुज़ार हो।

[सू० लुक़्मान, रु० २ आ० १४]

अहादीस

२८७ महबूबतरीन अमल[1]

हज़्रत अब्दुल्लाह बिन मस्ऊद (र०) से रिवायत है कि मैंने नबी (स०) से पूछा, कौनसा अमल अल्लाह तआला को ज़ियादः महबूब है। आपने फ़रमाया, वक़्त पर नमाज़ पढ़ना। मैंने कहा फिर ? फ़रमाया,

१ सर्वप्रिय कर्तव्य।

वालदैन के साथ भलाई करना। मैंने कहा फिर ? उसके बाद फ़रमाया, अल्लाह के रास्ते में जिहाद करना। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२८८ वालदैन के इहसान का सिला[1]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, लड़का अपने बाप को बदला नहीं दे सकता, मगर इस तरह कि बाप को किसी ग़ुलामी में पाये तो उसको ख़रीद कर आज़ाद करे। [मुस्लिम]

२८९ रिश्तेदारी का ख्याल

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर ईमान रखता हो वह अपने मेहमान की ख़ातिर करे और जिसका ईमान अल्लाह और आख़िरत पर हो वह सिलऽ.रह्मी[2] करे और जो अल्लाह और रोज़े आख़िरत पर ईमान लाये, वह बोले तो अच्छी बात बोले, वरना ख़ामोश रहे। [बु०-मु०]

२९० सिलऽ.रह्मी[2] और क़तऽ.रह्मी[3]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला ने मख़्लूक़[4] को पैदा किया है। जब उससे फ़ारिग़ हुआ तो रिश्ता ने अ़र्ज़ किया क़तअरह्मी से पनाह माँगने की यह जगह है। अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया हाँ क्या तू राज़ी है कि जो तुझे जोड़े उसे मैं जोड़ूँ और जो तुझको काटे उसको मैं काटूँ। रिश्ता ने कहा, हाँ। अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया, पस यह तेरे लिए है। फिर रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया अगर तुम चाहो तो इस आयत को पढ़ो।

फ़हल् अ़सैतुम् अिन् तवल्लैतुम् अन् तुफ़्सिदू फ़िल्अर्ज़ि व तुक़त्तिअ़ू अर्ह़ामकुम् (२२) अुलाअिकल्लज़ीन लअ़नहुमुल्लाहु फ़असम्महुम् व अ़अ़्मा अब्सारहुम् (२३)

क्या यह मुमकिन है कि जब तुमको हुकूमत और मौक़ा मिले तो तुम ज़मीन में फ़साद फैलाओ और क़तअरह्मी करो। वही लोग हैं कि

---

१ बदला २ अपने परिवार के प्रति प्रेम ३ अपनों से विमुख होना ४ सृष्टि।

अल्लाह् ने उन पर लानत की और अन्धा बह्रा किया ।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

[सू० मुह्म्मद्, रु० ३ आ० २२-२३]

२६१ माँ का ह्क़ और फ़ज़ीलत[1]

बुख़ारी की एक रिवायत में यह् भी है कि जो तुझे जोड़ेगा उसे मैं जोड़ूँगा जो तुझे काटेगा उसे मैं काटूँगा ।

हज़्रत अबू हुरैर: (र०) से रिवायत है कि एक आदमी नबी (स०) के पास आया और अर्ज़ किया या रसूलल्लाह् ! मेरे अच्छे बरताव का सबसे ज़ियाद: ह्क़दार कौन है । आपने फ़रमाया, तुम्हारी माँ । कहा फिर; फ़रमाया, तुम्हारे बाप । [बु०-मु०]

और एक रिवायत में है कि उस आदमी ने पूछा, या रसूलल्लाह् ! मेरे अच्छे बरताव का कौन ज़ियाद: मुस्तह्क़ है ? आपने फ़रमाया, तेरी माँ । कहा फिर ? फ़रमाया तेरी माँ । कहा फिर ? फ़रमाया जो सब से ज़ियाद: क़रीब हो, जो सबसे ज़ियाद: क़रीब हो ।

२६२ माँ बाप की बुढ़ापे में ख़िदमत

हज़्रत अबू हुरैर: (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, उसकी नाक ख़ाक आलूद:[2] हो, उसकी नाक ख़ाक आलूद: हो जिसने अपने माँ बाप के बुढ़ापे को पाया और जन्नत में न दाख़िल हुआ§ ।

[मुस्लिम]

२६३ क़तऽ.रह्मी का बदला सिलऽ.रह्मी से

हज़्रत अबू हुरैर: (र०) से रिवायत है कि एक आदमी ने नबी (स०) से अर्ज़ किया, या रसूलल्लाह् ! मेरे क़राबतदार हैं । मैं उनसे सिलारह्मी करता हूँ । वह क़तअ़रह्मी करते हैं । मैं उनके साथ भलाई करता हूँ, वह मेरे साथ बुराई करते हैं । मैं बुर्दबारी[3] करता हूँ, वह मुझसे सख़्ती बरतते हैं । आपने फ़रमाया, जैसे तुम कह रहे हो अगर यह सच है तो तुम उनके मुँह में ख़ाक डालते हो और अल्लाह् की मदद तुम्हारे साथ बराबर रहेगी । जब तक तुम इस पर क़ायम रहोगे ।

[मुस्लिम]

---

§ यानी उनकी ख़िदमत व फ़रमाबरदारी करके जन्नत का मुस्तह्क़ न हुआ ।

---

१ श्रेष्ठता, वरीयता २ धूल में सनी हुई ३ सहनशीलता ।

२९७ सिलारहमी से रिज़्क़[1] और उम्र में बर्कत

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो अपने रिज़्क़ में कशाईश चाहता हो और अपनी उम्र में तरक़्क़ी चाहता हो वह सिलारहमी करे। [बु०-मु०]

२९८ क़राबतदारों पर वक़्फ़ और हिब:[2]

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि अबू तलह: (र०) अन्सार में सबसे ज़ियाद: मालदार थे और उनको अपने माल में बैरुहा[3] बहुत मरग़ूब[4] था, वह मस्जिद के सामने था। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम अक्सर तशरीफ़ भी लाते और उसका पानी नोश फ़रमाते थे। जब यह आयत उतरी "लनतनालुल्बिर्र हत्ता तुन्फ़िक़ू मिम्मा तुहिब्बून" ⍟ तो अर्ज़ किया हुज़ूर मुझे सबसे ज़ियाद: बैरुहा पसन्द है, सो मैं इसको अल्लाह के लिए सदक़ा[5] करता हूँ। और इसके नेकी और ज़ख़ीर: की अल्लाह के यहाँ उम्मीद रखता हूँ। और आप इसको जहाँ अल्लाह चाहे वक़्फ़ कर दीजिए। आपने फ़रमाया, अरे यह माल तो बहुत नफ़ेवाला है। जो कुछ तुमने कहा, मैंने सुना। मेरी राय यह है कि इसको अपने क़राबतवालों पर वक़्फ़ कर दो। हज़्रत अबू तलह: (र०) ने कहा जो आप की मर्ज़ी हो। फिर उसको अबू तलह: (र०) ने अपने चचाज़ाद भाइयों में तक़्सीम कर दिया। [बु०-मु०]

२९९ वालदैन की ख़िदमत व रिफ़ाक़त में जिहाद का सवाब

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) बिन अम्र बिन अलआ़स से रिवायत है कि एक आदमी नबी (स०) की तरफ़ बढ़ा और कहा मैं आपसे हिजरत और जिहाद पर बैअ़त करना चाहता हूँ। और अल्लाह से उसके अज्र की ख़्वाहिश रखता हूँ। आपने फ़रमाया, तुम्हारे वालदैन में कोई ज़िन्दह हैं। कहा, हाँ दोनों ज़िन्द: हैं। फ़रमाया, तुम अल्लाह से अज्र चाहते हो? कहा, हाँ। फ़रमाया बस तुम अपने वालदैन की तरफ़ पलट जाओ और उनसे अच्छे बरताव करो।

और इन दोनों की एक रिवायत में है कि एक आदमी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आया और जिहाद की इजाज़त

⍟ उस वक़्त तक तुम नेकी को न पहुँचोगे जब तक अपनी कोई पसन्दीद: चीज न ख़र्च करो।

१ रोज़ी, जीविका २ इश्वरार्पण, दान ३ अबूतलह: के बाग़ का नाम ४ प्रिय ५ ईश्वरार्पण।

चाही। आप (स०) ने फ़रमाया, तेरे वालदैन ज़िन्द: हैं? कहा, हाँ। फ़रमाया कि उन्हीं क बारे में कोशिश करो† ।

२६७[११] बदला देनेवाला सिलारहमी करनेवाला नहीं हैं

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) बिन अम्र बिन अलआस से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, बदला देनेवाला सिलारहमी करनेवाला नहीं है। सिला-रहमी करनेवाला वह है कि उसके साथ क़तअरहमी की जाये और वह सिलारहमी करे। [बुख़ारी]

२६८[१२] जो रिश्ता काटेगा अल्लाह उसको काटेगा

हज़्रत आ़यश: (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि रिश्ता अ़र्श से मुअ़ल्लक़[1] है। और कहता है जो मुझे जोड़ेगा अल्लाह उसको जोड़ेगा और जो मुझको काटेगा अल्लाह उसको काटेगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२६९[१३] नान्हियाल वालों की मदद

हज़्रत उम्मुल्मोमिनीन मैमूना (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बग़ैर इजाज़त एक लौन्डी आज़ाद की। जब मेरी बारी का दिन आया और आप तश्रीफ़ लाये तो मैंने कहा, या रसूलल्लाह! क्या आपको मालूम है कि मैंने एक लौन्डी आज़ाद की है। आपने फ़रमाया, क्या तुमने ऐसा किया है? मैंने कहा, हाँ। फ़रमाया, अगर तुम उसको अपने नान्हयाल वालों को दे देतीं तो इसका तुमको बड़ा अज्र मिलता। [बु०-मु०]

३००[१४] मुश्रिक: माँ[2] के साथ सुलूक

हज़्रत असमा बिन्त अबू बक्र सिद्दीक़ (र०) से रिवायत है कि मेरी माँ मेरे घर आयीं और वह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में ईमान नहीं लाईं थीं। मेंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से फ़तवा लिया; मेरी माँ आयीं हैं और वह मुझ से हुस्ने सुलूक[3] की ख्वाहिशमन्द हैं। क्या मैं उनके साथ सिलारहमी कर सकती

---

† यानी बूढ़े माँ-बाप की ख़िदमत इस वक़्त तुम्हारे लिए जिहाद पर मुक़द्दम, और चूँकि जिहाद की नीयत थी और मअ़ज़ूरी[4] है, इसलिए इसका सवाब भी मिलेगा।

---

१ अधर में, लटकाया हुआ २ ग़ैरमुस्लिम माँ ३ सद्व्यवहार ४ मजबूरी।

हूँ ? आपने फ़रमाया, हाँ, तुम अपनी माँ के साथ सिलारहमी कर सकती हो। [बु०-मु०]

३ १६/१०१ शौहर के देने में दोहरा अज्र

हज़्रत अ़ब्दुल्लाह बिन मस्ऊ़द (र०) की बीवी ज़ैनब (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, ऐ औरतो ! सद्क़: करो, कुछ नहीं तो ज़ेवर ही सही। हज़्रत ज़ैनब (र०) कहती हैं कि मैं अ़ब्दुल्लाह बिन मस्ऊ़द के पास आयी और कहा कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमको सद्क़: का हुक्म देते हैं और तुम नादार[1] आदमी हो, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से जाकर दर्याफ़्त करो। अगर मुझे तुम्हारा देना काफ़ी हो तो ख़ैर, वरना दूसरों को दे दूँ। हज़्रत अ़ब्दुल्लाह (र०) ने कहा तुम ही जाओ। तो मैं गयी; देखा कि एक अन्सार की बीवी रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दरवाज़े पर खड़ी है। और यही ग़रज़ उनको भी लाई है। बिलाल (र०) आये तो मैंने कहा, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास जाओ और कहो कि दो औरतें दरवाज़े पर खड़ी हैं और पूछती हैं कि क्या हम अपने शौहरों को सद्क़: दे सकते हैं। मगर यह न बताना कि हम कौन हैं। हज़्रत बिलाल (र०) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आये और आपसे पूछा। आपने फ़रमाया, वह कौन हैं ? कहा एक अन्सार की बीवी हैं और एक ज़ैनब (र०)। आपने फ़रमाया कौन सी ज़ैनब। कहा अ़ब्दुल्लाह बिन मस्ऊ़द (र०) की बीवी। आपने फ़रमाया उनके लिए दोहरा अज्र है। एक क़राबतदारी का और एक सद्क़: का। [बुख़ारी-मुस्लिम]

३ १६/१०२ रसूलुल्लाह (स०) की तालीम

हज़्रत अबू सुफ़्यान (र०) से रिवायत है कि हिरक़्ल ने मुझसे कहा, नबी (स०) तुमको क्या हुक्म देते हैं। मैंने कहा वह कहते हैं कि एक अल्लाह की अ़िबादत करो और उसके साथ किसी को शरीक न करो और जो तुम्हारे बाप दादा कहते हैं वह छोड़ दो और नमाज़ का, सदक़: का, पाकदामनी और सिलारहमी का हुक्म देते हैं।

[बुख़ारी-मुस्लिम]

३ १७/१०३ रसूलुल्लाह (स०) के साथ तअ़ल्लुक़ व रिश्ता की बिना पर सुलूक

हज़्रत अबू ज़र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु

---

१ दरिद्र।

अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अन्क़रीब तुम एक ज़मीन फ़तिह करोगे। उसमें क़ीरात[1] का नाम लिया जायेगा।

और एक रिवायत में हैं कि मिस्र को फ़तिह करोगे उस ज़मीन में क़ीरात का नाम लिया जायेगा। तो तुम उसके रहनेवालों के साथ भलाई करना यह इसलिए कि उनका तअ़ल्लुक़ और रिश्ता है।

और एक रिवायत में है कि जब तुम उसको फ़तिह करो तो उसके रहनेवालों के साथ इहसान करो; इसलिए कि उनका तअ़ल्लुक़ और रिश्ता है। और फ़रमाया कि सुसराली रिश्ता है† । [मुस्लिम]

१०७ रसूलुल्लाह (स़०) का अहलेख़ान्दान से ख़िताब

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि जब यह आयत उतरी "व अन्जिर अ़शीरतकल्अक़्रबीन-"‡ तो रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने क़ुरैश को बुलाया। जब यह जमा हुए तो आ़म व ख़ास से रिवायत फ़रमाया। आपने फ़रमाया, ऐ बनी अ़ब्दुश्शम्स, ऐ बनी कअ़बबिन लुवई, अपनी जानों को आग से बचाओ। ऐ बनी मुर्रः बिन कअ़ब, अपनी जानों को आग से बचाओ! ऐ बनी अ़ब्देमनाफ़, अपनी जानों को आग से बचाओ! ऐ बनी हाशिम, अपनी जानों को आग से बचाओ! ऐ बनी अ़ब्दुल मुत्तलिब अपनी जानों को आग से बचाओ! ऐ फ़ातमा (र०) अपनी जान को आग से बचाओ! बेशक मैं अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से तुम्हारे लिए किसी चीज़ का मालिक नहीं। सिवा इसके कि तुम्हारा रिश्ता है जिसकी हिफ़ाज़त करूँ। [मुस्लिम]

१०८ रिश्तः का ख़याल

हज़्रत अम्र (र०) बिन अलआ़स से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है, पुकार कर बग़ैर पोशीदगी के फ़रमाते थे कि फलाँ की औलाद मेरी दोस्त नहीं है। मेरा दोस्त अल्लाह है और नेक मुसलमान, लेकिन उनका रिश्ता है। मैं उसकी हिफ़ाज़त करूँगा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ एक मुख़्तसर वजन।

---

† रिश्तादारी से मुराद यह है कि हज़्रत हाजरः, हज़्रत इस्माईल (अ़०) की वाल्दह और हज़्रत मारियः इब्राहीम इब्नि रसूलुल्लाह की वाल्दह मिस्र ही की थीं।

‡ अपने क़राबतदारों को डराओ।

२०/३०६ रिश्त: जोड़ने की फ़ज़ीलत

हज़्रत ख़ालिद (र०) बिन ज़ैद अन्सारी से रिवायत है कि एक आदमी ने अ़र्ज़ किया या रसूलल्लाह ! मुझे ऐसा अ़मल बताइए जो मुझे जन्नत में दाख़िल करे और दोज़ख़ से दूर रक्खे। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह की अ़िबादत करो और उसके साथ किसी को शरीक न करो। नमाज़ क़ायम रक्खो। ज़कात दो और रिश्त: जोड़ो। [बु०-मु०]

२१/३०७ दुहरी फ़ज़ीलत

हज़्रत सल्मान (र०) बिन आ़मिर से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जब तुम लोग इफ़्तार करो[1] तो खजूर से करो, इसमें बर्कत है। अगर खजूर न मिले तो पानी से खोलो। पानी पाक करनेवाला है। और सदक़ा मिस्कीन[2] पर सदक़ा है और रिश्तेदारों पर सदक़ा करने में दो फ़ज़ीलतें हैं। सदक़ा और रिश्ता जोड़ना। [तिर्मिज़ी]

२२/३०८ बाप के हुक्म से बीवी को तलाक़

हज़्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि मैं अपनी बीवी को बहुत चाहता था। हज़्रत उमर (र०) इसको नापसन्द करते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि उसको तलाक़ दे दो। मैंने इन्कार किया। हज़्रत उमर (र०) रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आये और इसका ज़िक्र किया। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, उसको तलाक़ दे दो। [अबूदावूद-तिर्मिज़ी]

२३/३०९ माँ के हुक्म से बीवी को तलाक़

हज़्रत अबू दरदा (र०) से रिवायत है कि एक आदमी मेरे पास आया और कहा मेरी बीवी है। और मेरी माँ मुझे हुक्म देती है कि उसको तलाक़ दे दो। मैंने कहा, रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते थे कि बाप जन्नत के दरवाज़ो में बीच का दरवाज़ा है। चाहे उस दरवाज़े को ज़ाया कर दो या उसकी हिफ़ाज़त करो। [तिर्मिज़ी]

२४/३१० ख़ाल:[3] माँ के मर्तब: में है

हज़्रत बरा (र०) बिन आ़ज़िब से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया कि ख़ाला माँ के मर्तबा में है। [तिर्मिज़ी]

---

१ रोज़: खोलो २ दीन असहाय ३ मौसी।

सरलार्थ—सीता के शिर पर धृत (धारण किया हुआ) चन्द्रातप का वस्त्र स्वयंवर-सभा-समुद्र की लहरों के सदृश सुन्दर दीख रहा है। वहाँ सखियों के पैरों के नूपुरों की बड़ी ध्वनि समुद्र के सीपों के स्वन (शब्द) के समान दर्शकों के मन मुग्ध कर रही है। उनकी बाहु-रूपी वासुकी स्तनरूपी मन्दर पर्वत को स्वतः विचलित करके उस समुद्र का मन्थन करने से उससे अमृतोपम (सखियों तथा सीता के मुख-निःसृत) हास्य उत्पन्न हो रहा है। नील सागर के मन्दर पर्वत तथा वासुकि सर्प से मथित होते समय, उससे सीपों तथा जल की क्रमशः 'मकमक' तथा कलकल ध्वनि और अमृत का उद्भव हुआ था। यहाँ नीलवर्ण-विशिष्ट चन्द्रातप सागर की तरंगों से, सखियों के स्तन मन्दर पर्वत से, बाहुएँ वासुकि से, नूपुरों की ध्वनि सीपों के स्वन से और आनन्द-सूचक हास्य अमृत से उपमित है। (४)

वितान-चीर—चन्दोवे का वस्त्र; वीचि—तरंगें; रुचिर, मनोहर; शुक्ति—सीप; उरज—स्तन (रूपक तथा उत्प्रेक्षा)। (४)

बिळसि बिळसि गर्भाळसी हंसी मन्थर मन्थन गतिरे।
वर सन्निधिकि से शोभानिधिकि नेउँ धिकिधिकि रतिरे।
बिहिले, वसुमतीपद सकळे।
विधाता विधानी उच्चाट निधानी नोहे सावधानी होइले। ५।

सरलार्थ—जब सखियाँ शोभानिधान सीता को रामचन्द्र के समीप लिए जा रही थीं, उस समय सीता की विलासजनित मृदुगति गर्भालसी हंसी के मन्दगमन को पराजित कर रही थी। उस समय उनकी शोभा रति को भी धिक्कारती थी। उन्हें देखकर राजाओं ने सावधान मन से विचार किया कि, इस चित्त-उद्दीपनकारिणी सीता के निर्माता शायद विधाता नहीं। (चूँकि सीता की शोभा सारी विधि-रचित शोभाओं से सुन्दरतर है, इसलिए प्रतीत हुआ कि वे स्वयं रचित हैं।) (५)

वरसन्निधिकि—पति (रामचन्द्र) के समीप; शोभा निधि—शोभानिधान; नेउँ—लेते समय; वसुमतीपति—राजा; विधाता विधानी—विधाता निर्माता; उच्चाट-निधानी—चित्त-उद्दीपनकारिणी; नोहे—नहीं। (५)

विघ्नराज सत उपमाराजित राजितमान करि लोड़ि।
वक्रतुण्ड हेले वर्ण्णि आणु य़ेणु सेमाने से माने बाहुड़ि।
विवेक, वर्ज्जन ए कदा नुहन्ति।
वृहत्कुक्षि तूर्ण्णे से पूर्ण्ण होइले धन्य सीता माळे जपन्ति। ६।

सरलार्थ—यह सच है कि विघ्नराज गणेश उत्कृष्ट उपमाएँ खोजकर उनसे सीता के सौन्दर्य की तुलनापूर्वक वर्णना करने गये थे। परन्तु असफल होकर वक्रतुण्ड बन गये। वे उपमाएँ अपमान के मारे लौट जाने को तैयार हुईं। तब गणेश ने अनुभव किया कि यद्यपि सीता की शोभा से वे उपमाएँ समकक्ष नहीं हैं, फिर भी शोभातिशय्य के कारण वे किसी भी प्रकार वर्जनीय नहीं हैं। इसी प्रकार का निर्णय करके गणेश ने उन्हें लाकर अपने बड़े गर्भ में रख लिया और तभी से लम्बोदर कहलाये। उसी दिन से माला धारणपूर्वक 'धन्य सीता'! (धन्य तुम्हारी शोभा!) यही मन्त्र जपने लगे। (६)

विघ्नराज—गणेश; उपमाराजि—उपमासमूह; राजितमान—शोभमान, देदीप्यमान; बृहत् कुक्षि—बड़ा पेट; तूर्ण—शीघ्र। (६)

विपुष्टि दृष्टि सृष्टि य़हिँ उशना एकदृष्टि कवि बोलाइ।
बणा हेबारे लक्षणा बारे बारे गणा ता करिबा किपाइँ।
बाळारे, विलोकि करि तो शोभित।
बहिले अनन्त[1] अनन्त[2] लपन वर्णि आणन्ते लाळायित। ७।

सरलार्थ—सीता के सौन्दर्य से तुलना के लिए उत्कृष्ट उपमाओं की खोज के उद्देश्य से बार-बार देखते हुए शुक्र भी पथभ्रष्ट हो गये। उपमाओं की ओर विशेष रूप से दृष्टि देने के परिणामस्वरूप उनकी एक आँख नष्ट हो गयी। इसलिए वे एक दृष्टि (काने) कवि (शुक्राचार्य) कहलाये। (शुक्राचार्य के एक आँख है)। तो उनकी कवि के रूप में हम गणना क्योंकर करें? अयि सीते! तुम्हारी शोभा देखकर उसकी वर्णना करने के लिए शेषदेव ने असंख्य मुख धारण किये। तथापि वर्णन करते समय मुखों के लारयुक्त होने से वर्णन नहीं कर सके। (७)

विपुष्टि दृष्टि—बार-बार दृष्टि; उशना—शुक्राचार्य; कवि—शुक्र; बणा—पथभ्रष्ट; तो शोभित—तुम्हारी शोभा; अनन्त[1]—शेषदेव; अनन्त[2] लपन—असंख्य मुख (यमक); लाळायित—लार टपकाता हुआ। (७)

विद्याविशारदा शारदा विनयी धरातनयि! हेले तोते।
बड़िमा-रक्षणे सुषमा असमा उपमा अंगीकार कृते।
बाळारे, वत्सळा हेलु भक्तियुक्ते।
विन्यास करिन्त कवित्व चातुरी कविसम्मते मतिमते। ८।

सरलार्थ—अयि पृथिवीकन्ये सीते। सर्वविद्या-पण्डिता सरस्वती

यह स्वीकार करके कि "तुम्हारी उत्कृष्ट शोभा के लिए ये सारी उपमाएँ असमान हैं", तुम्हारे प्रति विनयी हुईं। इससे उनकी बड़ाई की रक्षा हो गयी। (विनयी होने से उनकी बड़ाई घटने के बजाय बढ़ गई)। अयि सीते! तुमने उनके भक्तियुक्त वाक्यों से स्नेहयुक्त होकर उन्हें वरदान दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप उनके वरद पुत्र कवि लोग अपने-अपने इच्छानुसार स्वाधीन रूप से कवित्व-चातुर्य को नाना प्रकारों में प्रकाशित कर रहे हैं। (८)

शारदा—सरस्वती; धरातनयी—पृथिवीकन्या, सीता; वत्सला—स्नेहयुक्त; मतिमते—इच्छानुसार। (८)

विश्रम्भ पदर गमने आदर करि के सुमने भाळइ।
विशाळ ऊरु-करे चारु यौवन-करी कोकनद चाळइ।
बाळार, बोले के निरेखि अंगुळि।
बाळिका मही माळिका करि तहिँ अशोक-कळिकारु झळि। ९।

सरलार्थ—रुक-रुक कर चलते हुए युवती सीताजी के पैरों के विन्यास को सादर देखकर कोई राजा अपने उत्तम मन में सोच रहा है, "मनोहर यौवन-रूपी हस्ती मानो अपनी बड़ी ऊरु (जांघ) रूपी सूँड़ से रक्त पद्म का संचालन कर रहा हो"। (सीता यौवन की प्रतिमूर्त्ति हैं जो हस्ती के समान है। उनकी प्रत्येक जाँघ हस्ती की सूँड़ के सदृश है तथा लाल रंग के पैर रक्त-कमल हैं। पैरों का चलना रक्त-कमलों के जाँघरूपी सूँड़ के द्वारा संचालित होने की तरह प्रतीत होता है।) उनकी पदांगुलियों को निरख कर कोई राजा बोल रहा है, "मानो यह बालिका (सीता) भक्ति के निदर्शन स्वरूप अपनी माता पृथिवी को अशोक-कलियों से अधिक कान्ति-युक्त पदांगुलियों रूपी फूलों की माला अर्पण कर रही हो। (९)

विश्रम्भ—विश्राम, रुक-रुक कर चलना; भाळइ—सोचता है, विचार करता है; ऊरु-करे—जाँघ-रूपी सूँड़; यौवन-करी—यौवन-रूपी हस्ती; कोकनद—रक्तकमल (उत्प्रेक्षा और व्यतिरेक)। (९)

बिहेठन मुख पयोधर शिख देखि केते योखि उपमा।
विषम सन्ताप सम्भूते शम्भुर शून्यु खसि आसि चन्द्रमा।
बाळार, विगत हेउँ कोणे डोळा।
विहरि हरिण कि विषहरण बेनि संशय उपुजिला। १०।

सरलार्थ—सीता के मुखमण्डल को लज्जावशत: अवनत होकर उनके स्तनाग्र पर निहित हुआ देखकर किसी राजा ने अपने मन में उपमा दी, "महादेवजी के अतिशय गरल-जनित संताप को शान्त करने के लिए मानो चन्द्रमा आकाश से उतर पड़ा हो। (स्तन महादेवजी तथा मुख चन्द्रमा से उपमित है।) प्रत्येक आँख के कोने में पुतली का आना-जाना देखकर प्रतीत हुआ, मानो चन्द्र की देह पर हिरन विहार कर रहा हो अथवा शिवजी की विष-ज्वाला अपसारित होती जा रही हो! इस तरह दो संशय मन में उपजे। (१०)

विहेठन—अवनत, झुका हुआ; पयोधर—शिख-स्तनाग्र; योखि—जोड़कर (तुलना करके); विगत—गतागत, आवागमन, आना-जाना; हेउँ—होते; डोळा—पुतली; बेनि—दोनों (उत्प्रेक्षा और सन्देह)। (१०)

विघटना लक्ष्यकृते केते दक्ष चाहिँ देइ चारु अळक।
विलोमलोम वर्ण्णस्तोम ए कामदरकु करता तारक।
बाळार, विचित्र तिळक शायक।
विश्वकेतुकु धन्वी बोलि दइबे होइब कि एबे फरक। ११।

सरलार्थ—एक विशेष घटना यह घटी। सीता की मनोहर अलकों को निरख कर कई दक्ष राजाओं ने लक्ष्य किया कि ये 'लोमविलोम' अर्थात् उलटे-पुलटे अक्षरों की श्रेणी हैं। ये अलकें कन्दर्प-भय की कारक तथा साथ ही तारक भी हैं। अन्यान्य राजा इनको देखकर कन्दर्प की पीड़ा से पीड़ित होंगे जब कि रामचन्द्रजी कन्दर्प-जनित पीड़ा से त्राण पाएँगे। दैवयोग से कन्दर्प धनुर्द्धर के नाम से प्रसिद्ध है। आज सीता की भ्रूलता के मध्य में स्थित विचित्र तिलक शर की तरह शोभित हो रहा है। उसे देखकर किसी ने सोचा, "कन्दर्प की धनुर्द्धर की प्रसिद्धि में क्या आज फर्क पड़ गया? अर्थात् क्या आज उसकी वह प्रसिद्धि लुप्त हो गई? क्या सीता ने कन्दर्प से धनुष तथा बाण छीनकर उसकी धनुर्द्धर की प्रसिद्धि का लोप कर दिया? क्योंकि विचित्र-तिलक से शोभित उनकी दोनों भ्रूलताओं ने बाण से युक्त कन्दर्प के धनुष की शोभा धारण की थी। (११)

विघटना—विशेष घटना; दक्ष—निपुण; वर्ण स्तोम—अक्षर-समूह; कामदर—कन्दर्प जनित डर; शायक—शर, बाण; विश्वकेतु—कन्दर्प; धन्वी—धनुर्द्धर; फरक—फर्क, प्रभेद। (११)

बुधाने उपमा विधाने आणिले केश-वेश-जालि सिन्दूरे।
विप्रचित्तिसुत मध्य पाटसूत्र सिहाँरु भूषित टोपरे।
बाळार, विशीर्ण्ण झिलिमिलि माळि।
विजृम्भित वशे जम्भादि दन्ताळि उत्तंस घेनि दिशे झळि। १२।

सरलार्थ—पण्डितों ने सीता के केशों के वेश-विन्यास में प्रयुक्त मोतीजाली तथा सिन्दूररेखा देखकर उपमा दी, "मानो राहु का मध्यदेश पट्टसूत्र से सी हुई टोपी से भूषित हुआ है! (केश राहु से, मुक्ताजाली टोपी से तथा सिन्दूररेखा पट्टसूत्र से उपमित है।) उनकी विपुल झिलमिली माला तथा उत्तंस नामक कर्णाभूषण देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह केशरूपी राहु जम्हाई लेने के मिस (बहाने से) मुखमध्यस्थित दन्तों की शोभा को दिखा रहा हो। (१२)

बुधाने—पण्डित लोग; विप्रचित्तिसुत—राहु; पाटसूत्र—रेशम का सूत; सिहारु—सी हुई, सिलाई की हुई (टोपी); विशीर्ण—विपुल, बहुत; विजृम्भितवशे—विशेष रूप से जम्हाई लेने के मिस; जम्मादि—डाढ़ आदि; दन्ताळि—दन्त समूह; उत्तंस—कर्णभूषण विशेष; झळि—प्रकाशमान, शोभायमान (उत्प्रेक्षा)। (१२)

विलक्षित कले क्षितिक्षत्रिकुळे प्रदीप्त ताटङ्क अनाइ।
विश्वकेतु तम घोटित जनरे प्रसन्न दरशन पाइँ।
बाळा ये, बिलम्बाइ बेनि प्रदीप।
विज्ज्वळितकारी रतन झुणा रे य़तन दिशइ स्वरूप। १३।

सरलार्थ—सीता के कर्णस्थित उज्ज्वल ताटंक द्वय को देख राजाओं ने सोचा, "कामान्धकाराच्छन्न लोगों को स्वच्छ आलोक देने के लिए सीता ने मानो अपने कानों में दो प्रदीप धारण किये हैं और उन्हें रत्नरूपी धूने से प्रज्वलित कर रही हैं"। उसी आलोक से स्वयं उनका शरीर सुन्दर दीख रहा है और उसके दर्शन से लोगों का काम-सन्ताप भी शान्त हो रहा है। (१३)

क्षितिक्षत्रिकुळे—राजा लोग; विश्वकेतु—कन्दर्प; तम—अन्धकार; प्रसन्न दरशन पाईं—निर्मल आलोक देने के लिए; विज्ज्वळितकारी—प्रज्वलित कर रही हो; रतन-झुणा—रत्नरूपी धूना; य़तन—सुन्दर; दिशइ—दीखता है; स्वरूप—शरीर (उत्प्रेक्षा)। (१३)

व्यक्त ए ओष्ठ परा तोरा सुरंगे परम्परा नाहिँ के भाळि।
बळे ताम्बुळे क्षाळित बुद्धिबळे देलेटि ताहा दर्प दळि।
बाळार, विम्ब गण्डचित्र अनाइँ।
विक्षिप्त रस हरष हासपूर्ण्ण स्थान एके लक्ष्य मणाइ। १४।

सरलार्थ—किसी ने उनके अधरों को देखकर सोचा, "इनके अधरों के सदृश गाढ़े रक्तवर्ण का पदार्थ जगत् में अभी तक रचा ही नहीं गया है इसलिए मानों इन्होंने तांबूल भक्षण के मिस अपने दोनों अधरों को धो करके पान के गर्व को दलन कर दिया है! पुनश्च बाला सीता के दर्पण सदृश गण्डमण्डल (कनपटी) पर अंकित मकरी चित्र को निरखकर किसी राजा ने मन में विचार किया,' "भिन्न-भिन्न स्थलों में बिखरे हुए हर्ष (प्रमोद) तथा हास (हँसी) आदि रस (अनुराग) यहाँ एक ही स्थल पर (मुखमण्डल पर) पूर्ण रूप से एकत्रित परिलक्षित हो रहे हैं। (१४)

ओष्ठपरा—अधरों के समान; सुरंगे—रक्तिमानें; क्षाळित—धौत; बिम्बगण्ड चित्र—दर्पण तुल्य गाल पर अंकित चित्र; अनाइ—देखकर; विक्षिप्त—बिखेरा हुआ; एके लक्ष—एक ही स्थान पर परिलक्षित; मणाइ—विचार किया, सोचा। (१४)

बल्गु चिबुके कस्तूरी जाणि केहि सुमरे तिळ कुसुमरे।
वशरे य़ाउँ भ्रमर[1] श्वासवशे पात कि लावण्य भ्रमरे[2]।
बाळार, बिलम्बमाळा फुलि देखि।
बाना चरम मनोरम प्रभारे बन्धा कि एमन्त के य़ोखि। १५।

सरलार्थ—सीताजी के मनोहर चिबुक में मृगमद से अंकित भ्रमरी का चित्र देखकर किसी राजा ने सोचा, "क्या भ्रमर नासा को तिलपुष्प समझकर उसे चुम्बन करने की आशा से जाते-जाते प्रश्वास-वायु के प्रतिघात से सीता के लावण्यमय जलभँवर तुल्य चिबुक के गर्त्त में पड़ गया है! सीता के पृष्ठदेश पर विलम्बित मालाओं तथा फुली (सूत्र निर्मित पुष्पाकार गुच्छ, केश-बन्धनी का प्रान्तस्थ गुच्छ) को देखकर किसी को ऐसा प्रतीत हुआ, उनकी पीठ की शोभा जगत् में अनुपम है, इस बात का प्रमाण देने के लिए कि मानो उस (पीठ) पर पताका बँधी हुई हो। (१५)

बल्गु—सुन्दर, मनोहर; सुमरे—स्मरण करता है, भ्रमर[1]—भौंरा; पात कि—पतित हुआ, पड़ गया क्या!; लावण्य—सौन्दर्य, भ्रमरे[2]—भँवर में, जलावर्त्त में (यमक); बाना—पताका; चरम—पृष्ठ देश, पीठ (उत्प्रेक्षा) (१५)।

बाजन्ति रसना बळा बरजना नूपुर प्रचार माधुर्य्य ।
बोलन्ति रस ना बळा ना सुमना त्रिपुरशोभीटि ए हेज ।
बाळार, बपुसंगरंगु पण्डित ।
व्यकत भंगाभंग दत्ताक्षर य़े च्युत दत्ताक्षरे मण्डित । १६ ।

सरलार्थ—जब सखियाँ सीता को स्वयंवर-सभा में लिए जा रही थीं, उस समय उनके रसना (करधनी, मेखला), बळा (पायजेब) तथा नूपुर आदि गहने वादन के मिस निम्नलिखित बातें अभिव्यक्त कर रहे हैं। रसना (करधनी) भंग अक्षरों में (सभंग श्लेष में) बोल रही है, "हे राजाओ! सीता के प्रति तुम लोग 'रस' 'ना'—'रसो मत'। (रसमग्न मत हो, आसक्त मत हो।) 'बळा' (पायजेब) शब्द से 'ना' तथा 'सुमना' दत्त होने पर वह 'अभंग दत्ताक्षर' हुआ, इस प्रकार 'ना' तथा 'सुमना' से होकर युक्त 'बळा' बोल रही है, "हे राजाओ! सीता के प्रति तुमलोग 'बळा' 'ना' 'सुमना'—उत्तम रूप से मन न चलाओ। (प्राप्ति की आशा मत करो, मन के लड्डू मत खाओ।) फिर नूपुर च्युत दत्ताक्षर में बोल रहा है, "ये सीता त्रिपुरशोभी हैं। इनको पाने की इच्छा मत करो"। ('नूपुर' शब्द का आद्यवर्ण 'नू' च्युत होकर 'त्रि' दत्त हुआ और प्रान्त में 'शोभी' दत्त होकर 'नूपुर' शब्द की जगह 'त्रिपुरशोभी' शब्द की सृष्टि हुई। इसको 'च्युतदत्ताक्षर' कहते हैं।) इस प्रकार रसना, बळा तथा नूपुर आदि गहने भंग, अभंग दत्ताक्षर तथा च्युत दत्ताक्षर में राजाओं से बोल रहे हैं कि इन त्रिपुरशोभिनी सीता की प्राप्ति के लिए मन के लड्डू मत खाओ। अच्छा ये गहने तो सब निर्जीव पदार्थ हैं। इन्होंने बात कही कैसे? परन्तु ये तो सीताजी के अंगों के साथ रहकर पण्डित बन गये हैं। इसलिए भंग, अभंग दत्ताक्षर तथा च्युत दत्ताक्षर आदि अलंकारों से मण्डित वाक्य बोलने में समर्थ हुए हैं। (१६)

विशेष—भंग, अभंगदत्ताक्षर, च्युत दत्ताक्षर आदि अलंकार उपेन्द्रभंज की निजी विशेषता है। (१६)

बुझि ए शबद राजने स्तबध वीरायुधमान पतन ।
बदाबदि य़ाइथिले लाजे केहि ए शोभा हुअन्ता दर्शन ।
बाळा य़े, वरणमाळा धरिथिले ।
व्रीड़ासंयुते उतकण्ठी सुकण्ठी रामगळारे लम्बाइले । १७ ।

सरलार्थ—यह शब्द (अलंकारों ने वाक्चातुरी के मिस जो शब्द प्रकट किया) समझ कर राजा लोग स्तंभीभूत (खंभे के समान जड़)

हो गये। उनके हाथों से वीरत्व के सूचक अस्त्र शस्त्रादि खिसक पड़े। वे आपस में बातचीत करने लगे, "यदि लज्जा के कारण हम लोग यहाँ से भाग जाते तो सीता की अनुपम शोभा के कैसे दर्शन कर पाते"? इसी समय सुन्दर कण्ठवाली सीता ने लज्जायुक्त होकर उनकी प्राप्ति के लिए उत्कण्ठित रामचन्द्र के गले में वरमाला पहना दी। (१७)

वीरायुध—वीरत्व के सूचक अस्त्रशस्त्र; बदाबदि—बातचीत करने लगे; यिाइथिले—अगर चले गये होते (तो); केहि—कैसे (अन्यत्र कोई); ब्रीड़ा—लज्जा; लम्बाइले—पहना दी। (१७)

बर्य्या प्रभांगी कोणिआइ अनाइ से भंगी धैर्य्ये भंगी हेला।
बाहुड़े हुड़े से पथरे मन्थरे मन पालट करि नेला।
बाहुर, विमळ चम्पादाम भाव।
बाहुड़ाइ धन ईश हेबा दिन देबाकु विचारे राघव। १८।

सरलार्थ—स्वयंवरा उज्ज्वलांगी सीता ने रामचन्द्रजी को वरमाला पहनाते समय उनकी ओर, कटाक्षपात करने में जो भंगी प्रकट की, उससे रामचन्द्र का धैर्यभंग हुआ। वरमाला पहिनाने के बाद सीता धीर गति से लौट रही थीं। फिर भी, (रामचन्द्र के दर्शन से वे इतनी विह्वल हो गई थीं कि उन्हें तन मन सब कुछ समर्पित कर दिया था, जिसका नतीजा यह हुआ कि) वे पथ भूल गयीं। सीता के लौट जाने के बाद रामचन्द्र ने सोचा, "ये स्वच्छ चम्पक माला के सदृश अपनी दोनों बाहुओं को मेरे गले में अर्पित किये बिना क्यों लौट गयीं? 'ईश', अर्थात् जो महादेव हैं, वे चम्पा फूलों से पूज्य हैं। अतः जिस दिन मैं महादेव के नामानुसार उनका 'ईश' (पति) होऊँ, उसी दिन सीता मेरे गले में अपनी बाहु रूपी चंपकमाला अर्पित करेंगी। (१८)

बर्य्या—स्वयंवरा; प्रभांगी—उज्ज्वल अंग है जिसका, सीता; कोणिआइ अनाइ—तिरछी चितवन डालना, कटाक्षपात करना; हुड़े—भूलती है; चम्पादाम—चम्पा माला। (१८)

वर्त्ती होइगला य़ुवती-रतन नेत्ररोग गला निबर्त्ति।
विस्मापन रचि जालिक य़ेमन्त देखाइ हरइ तड़ति।
बाळार, विलोकन सेहि प्राकर।
विसर्जने सभा राजने गमिले स्थित राम-आरामपुर। १९।

हळदीकुंकुमें ताटें भरोनी । बिदोबिदीं धांवती सुवासिनी ।
पावल्या कौसल्येच्या सदनीं । वेगेंकरोनि तेधवां । २३२
मंगळतुरांचा एकचि नाद । घरोघरीं ब्रह्मानंद । ते समयींचा
आनंद । भोगींद्र वर्णूं शकेना । ३३ आनंदला ब्रह्मनंदन ।
चहूंकडोन धांवले ब्राह्मण । जैसा क्षीरसागर देखोन । क्षुधार्थी
वेगें पावती । ३४ कीं महापर्वकाळ प्रगटला । प्रयागासी
धांवे भक्तमेळा । कीं गांवासमीप परीस निघाला । दुर्बळ
धांवती लोह घेउनी । ३५ कीं तृषाक्रांत गो-भार सकळी ।
धांवती जैसे गंगाजळीं । कीं वृक्ष दाटले देखून फळीं ।
विहंगम जैसे झेंपावती । ३६ तैसी ब्राह्मणांची ते काळीं ।
दाटी जाहली राजाजवळी । पुत्रमुख पहावया ते वेळीं ।
दशरथराव चालिला । ३७ दशरथ म्हणे याचकांसी । जे जे
इच्छा असेल मानसीं । ते ते मागा मजपाशीं । येच समयीं
देईन । ३८ भांडारें फोडिलीं बहुत । याचकांसी म्हणे दशरथ ।

उस समय सुवासिनी (सुहागन) स्त्रियाँ हलदी-कुंकुम से थालियाँ भरकर रास्ते-रास्ते में दौड़ीं और वे शीघ्रता से कौसल्या के सदन में आ पहुँचीं । २३२ मंगल तुरहियों का अतुल घोष हो रहा था । घर-घर में ब्रह्मानन्द (अनुभव हो रहा) था । उस समय के आनन्द का वर्णन भोगीन्द्र शेष (तक) नहीं कर सकता । २३३ ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ आनन्दित हो गये । जैसे क्षीरसागर को (उपस्थित) देखकर भूखे लोग वेगपूर्वक (उसके पास) पहुँच जाते हैं, वैसे ही चारों ओर से ब्राह्मण दौड़े (हुए आ गये) । २३४ अथवा महान् पर्व का काल आए, तो भक्तजनों का समूह प्रयाग (की ओर) दौड़ता है; अथवा जिस प्रकार गाँव के पास पारस निकल आए, तो दुर्बल (अर्थात् धन रूपी बल से हीन–दरिद्र) लोग लोहा लेकर दौड़ते हैं ; अथवा प्यास से व्याकुल सब गायों का समूह गंगाजल की ओर दौड़ता है; अथवा जिस प्रकार वृक्षों को फलों से लदे हुए देखकर पक्षी (उनकी ओर) लपकते हैं, उसी प्रकार उस समय ब्राह्मणों की भीड़ राजा के समीप इकट्ठा हो गयी । उस समय राजा दशरथ पुत्र का मुख देखने के लिए चले । २३५-२३७ दशरथ ने याचकों से कहा—'मन में जो-जो (अर्थात् जिस-जिस की) इच्छा हो, वह (उस-उसको) मुझसे माँग लो, मैं इसी समय दूँगा ।' २३८ बहुत भण्डार मुक्त किये दशरथ ने, (फिर) याचकों से कहा—'जितना आ सकता हो—उतना असंख्य थैलियाँ बाँधकर अब ले जाओ ।' २३९ तब साथ में ब्राह्मणों

मोटा बांधोनि अमित। आवडे तितुकें न्या आतां। ३९ समागमें घेऊन ब्राह्मण। महाराज तो अजनंदन। प्रवेशला आनंदेंकरून। कौसल्यासदनीं तेधवां। २४० दशरथें करोनियां स्नान। केलें आधीं पुण्याहवाचन। पहावयासी पुत्रवदन। राजा जवळी पातला। ४१ श्रीरामवदन ते अवसरीं। न्याहाळितां तोषला अंतरीं। मधुबिंदु घालोनि मुखाभीतरीं। मधुकैटभारी तृप्त केला। ४२ श्रीरामाचें जातक। करी तेव्हां नृपनायक। गो-भू-रत्नें असंख्य। मग देत याचकांसी। ४३ रत्नजडित सिंहासन। त्यावरी माय बैसली राम घेऊन। मृगांकवर्ण चामरें जाण। दोघी ढाळिती दोहींकडे। ४४ पीकपात्र घेऊनि हातीं। समीप विलसे एक दूती। कनकांबराची घेऊन बुंथी। बैसली सती कौसल्या। ४५ भोंवते वेष्टिले विद्वज्जन। त्यांसी भूतभविष्यवर्तमानज्ञान। सात शतें स्त्रिया धांवोन। येत्या जाहल्या दशरथाच्या। ४६ जैशा केवळ विद्युल्लता। तैशा अलंकारवस्त्र-मंडिता। पाळा कौसल्येभोंवता।

को लिये हुए महाराज अजनन्दन (दशरथ) ने कौसल्या के सदन में आनन्द-पूर्वक प्रवेश किया। २४० स्नान करके दशरथ ने पहले पुण्याहवाचन (नामक) विधि सम्पन्न की और पुत्रमुख देखने के लिए राजा (उसके) निकट पहुँचे। २४१ उस अवसर पर श्रीराम का मुख निरखते ही वे अन्तःकरण में सन्तुष्ट हुए। (उसके) मुख में मधु की बूंद डालकर उन्होंने (मधु और कैटभ नामक दैत्यों के शत्रु भगवान्) विष्णु (अर्थात् राम) को तृप्त किया। २४२ तब नृप-नायक दशरथ ने श्रीराम की जातक नामक विधि सम्पन्न की। तदनन्तर उन्होंने याचकों को अनगिनत गायें, भूमि और रत्न प्रदान किये। २४३ रत्नजटित सिंहासन (था, उस) पर कौसल्या राम को लिये हुए बैठी। देखो, दो स्त्रियाँ दोनों ओर (खड़ी होकर) चन्द्र के-से (उज्ज्वल) वर्ण के चँवर झुला रही हैं। २४४ हाथ में पीकदान लिये हुए पास ही एक दूती (दासी) शोभायमान थी। स्वर्ण (के समान पीले रंग के) वस्त्र का घूँघट ओढ़े हुए सती कौसल्या बैठी थी। २४५ (उसे) विद्वान् लोग घेरे हुए थे। उन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य का ज्ञान था। (तब) दशरथ की सात सौ स्त्रियाँ (वहाँ) दौड़ी हुई आयीं। २४६ विशुद्ध बिजलियाँ जैसी (देदीप्यमान) होती हैं, वैसी (देदीप्यमान) आभूषणों और वस्त्रों से विभूषित वे स्त्रियाँ थीं। उस समय कौसल्या के चारों

शोभला कैसा ते वेळीं । ४७ महामाया आदिभगवती ।
तीभोंवत्या मिळाल्या अनंत शक्ती । कीं सूर्यचक्रासी वेष्टिती ।
किरणें जैसीं तयापरी । ४८ वसिष्ठ गुरु होऊन पुढें ।
विलोकी श्रीरामाचें रूपडें । जे जे जन्मकर्मनिवाडे । ते
रायापुढें सांगत । ४९ म्हणे हा क्षीरसागरविहारी । जन्मला
कौसल्येचे उदरीं । निजजन तारावयासी निर्धारीं । अवतरला
आदिपुरुष । २५० द्वादश वर्षें यासी भरतां । एक द्विज येईल
अवचिता । प्रार्थोनिया दशरथा । घेऊन यासी जाईल । ५१
आरंभीं सोडोनि एक बाण । एक राक्षसी वधील दारुण ।
गोब्राह्मणमख-पाळण । करील जाण पुत्र तुझा । ५२ कृशान
प्रवेशे शुष्कविपिनीं । तैसा जाळील राक्षस मखरक्षणीं । पुढें
चरणस्पर्शेंकरूनी । एक ललना उद्धरील । ५३ परम प्रचंड
कोदंड । तें स्वदंडबळें करील दुखंड । एकपत्नीव्रत प्रचंड ।
वीर होईल त्रिभुवनीं । ५४ महायोद्धा एक ब्राह्मण । त्यास

ओर (यह) नारी-वृन्द कैसे शोभायमान था ? २४७ (देखने पर जान पड़ता था कि कौसल्या) आदिमाया आदिभगवती है और उसके चारों ओर अनन्त शक्तियाँ इकट्ठा हुई (हैं); अथवा जैसे सूर्यमण्डल को किरणें घेर लेती हैं, वैसे उन नारियों ने कौसल्या को घेर रखा था । २४८

गुरु वसिष्ठ ने आगे बढ़कर श्रीराम के मोहक रूप को देखा और वे (अब) उस शिशु के जन्म, कर्म सम्बन्धी निर्णय (विचार) राजा के सम्मुख कहते हैं । २४९ उन्होंने कहा—'क्षीरसागर में विहार करनेवाले इन भगवान् (विष्णु) ने कौसल्या के उदर से जन्म लिया (है) । अपने भक्त-जनों का उद्धार करने के लिए निश्चय ही आदि पुरुष (इस शिशु के रूप में) अवतरित है । २५० इसकी अवस्था के बारह वर्ष पूर्ण होने पर अकस्मात् एक ब्राह्मण आएगा (और) वह दशरथ से विनती करके इसे (अपने साथ) ले जाएगा । २५१ शुरू में एक बाण चलाकर वह (एक) भयानक राक्षसी का वध करेगा ; (और हे राजा, यह) जान लो कि तुम्हारा पुत्र गायों, ब्राह्मणों और यज्ञों का पालन (रक्षण) करेगा । २५२ सूखे वन में प्रवेश कर जैसे अग्नि उसे जला डालती है, वैसे यज्ञ की रक्षा करते समय वह राक्षसों को जला डालेगा (मार डालेगा) । आगे (चलकर) वह चरण-स्पर्श से एक स्त्री का उद्धार करेगा । २५३ एक परम प्रचण्ड धनुष है, उसे वह अपने बाहु-बाल से दो टुकड़ों में तोड़ डालेगा । वह त्रिभुवन में एकपत्नी-व्रत का धारी प्रचण्ड वीर पुरुष

जिंकील न लगतां क्षण। बंधुसहित परतोन। अयोध्येसी येईल। ५५ राज्यीं बसतां हा वरिष्ठ। मग एक होईल अरिष्ट। नगरलोक पावती कष्ट। खेद उत्कट करितील। ५६ हा नरवीर-पंचानन। प्रेमें पाळील पितृवचन। मग स्त्रीसमवेत कानन। चतुर्दश वर्षें सेवील। ५७ हा नसतां आश्रमांत। एक राक्षस येईल अकस्मात। याचे स्त्रियेस नेईल सत्य। षण्मासपर्यंत निर्धारें। ५८ मग हा स्त्री शोधितां अरण्यांत। वानर मिळतील अकस्मात। एक वानर उन्मत्त। त्यास मारील हा न कळतां। ५९ ब्रह्मांड नाचवील नखाग्रीं। ऐसा एक वानरकेसरी। जाऊन समुद्रसंभवपुरीं। महाप्रलय करील तो। २६० शुद्धि आणितां राघवेंद्र। पाषाणीं पालाणील समुद्र। शरण येईल एक रजनीचर। चिरंजीव त्यासी करील हा। ६१ मारूनि राक्षसां सकळां। सोडवील सुरांच्या बंदिशाळा। मागुती येईल स्वस्थळा। अयोध्यापुरा गजरेंसीं। ६२

(सिद्ध) होगा। २५४ एक महायोद्धा ब्राह्मण को वह क्षण न लगते ही जीतेगा और बन्धु-सहित अयोध्या (को) लौटेगा। २५५ इस श्रेष्ठ (राजपुत्र) के राजगद्दी पर बैठते समय एक महान् विघ्न उपस्थित होगा। (उससे) नागरिक जन बहुत कष्ट को प्राप्त हो जाएँगे और तीव्रतम दुःख (अनुभव) करेंगे। २५६ यह वीर पुरुष (रूपी) सिंह प्रेम से पिता के वचन का पालन करेगा और तदनन्तर पत्नी सहित चौदह वर्ष वन में निवास करेगा। २५७ आश्रम में इसके नहीं होने पर (इसकी अनुपस्थिति में) अकस्मात् एक राक्षस (वहाँ) आएगा; (और) सचमुच इसकी स्त्री को छः महीने तक ले जाएगा। २५८ तत्पश्चात् जब यह वन में (अपनी) स्त्री को खोजता रहेगा, तो सहसा (इससे) वानर मिलेंगे। एक वानर उन्मत्त है, उसे (उसके) अनजाने यह मार डालेगा। २५९ जो ब्रह्माण्ड को नाखून की नोक पर नचाएगा (नचा सकेगा) ऐसा एक वानर-सिंह (श्रेष्ठ) है। वह (समुद्र में में उत्पन्न) लंका नगरी में जाकर महाप्रलय (उत्पात) मचाएगा। २६० (सीता की) खोज करके (समाचार) लाने पर राघवेन्द्र राम पाषाणों से समुद्र को आच्छादित करेगा (समुद्र पर पाषाणों को तैराएगा)। एक राक्षस उसकी शरण में आएगा; उसे यह 'चिरंजीव' बनाएगा। २६१ (तत्पश्चात् सब राक्षसों को मार डालकर देवों को बन्दी-शालाओं से छुड़ाएगा। (उसके बाद) वह अपने स्थान अयोध्यापुर (को) गाजे-बाजे

अकरा सहस्र संवत्सर। राज्य करील हा राजेंद्र। पुढें पुत्रासीं युद्ध थोर। करील कौतुकेंकरूनियां। ६३ शेवटीं अयोध्या विमानीं घालोनी। नेऊन ठेवील वैकुंठभुवनीं। ऐसें जातक ऐकोनि कर्णीं। राव दशरथ तोषला। ६४ स्तनपान करितां रघुनंदन। पाहे वसिष्ठाकडे परतोन। कीं वाल्मीक-भाष्य संपूर्ण। कथिलें येणें अवलीलें। ६५ तों सुमित्रेसी जाहला पुत्र। म्हणोनि धांवत आले विप्र। क्षीरसागरीं-हूनी श्रीधर। कौसल्यामंदिरीं पातला। ६६ तंव तो भोगींद्र पाळती घेत। पाठिराखा पातला त्वरित। सुमित्रेचे शेजे रिघत। बाळदशा धरोनिया। ६७ सुमित्रा स्वप्न देखत। कीं मज जाहला सुलक्षण सुत। सावध होवोनिया पाहत। पुढें खेळत बाळक तो। ६८ ऐसा जन्मला सुमित्रानंदन। विप्रांसहित दशरथ येऊन। तत्काळ केलें पुण्याहवाचन। जातकर्मादि सर्वही। ६९ कैकयीस जाहले दोन कुमर। ते

के साथ लौट आएगा। २६२ (फिर) यह राजेन्द्र ग्यारह हज़ार वर्ष राज करेगा। आगे चलकर वह पुत्रों से लीला पूर्वक बड़ा युद्ध करेगा। २६३ अन्त में अयोध्या को विमान में रखकर यह (उसे) वैकुण्ठ लोक में ले जाकर रखेगा।' (राम के विषय में) ऐसा जातक (भविष्य-कथन) कानों से सुनकर राजा दशरथ सन्तुष्ट हो गये। २६४ स्तन-पान करते हुए रघुनन्दन राम मुड़-मुड़ कर वसिष्ठ की ओर (इस विचार से) देखते रहे कि इन्होंने तो वाल्मीकि द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण भाष्य (विस्तृत विवरण) सहजतया कह दिया। २६५

इतने में सुमित्रा के पुत्र (उत्पन्न) हुआ। इसलिए ब्राह्मण दौड़े आये। (इस प्रकार जब) क्षीरसागर से कौसल्या के मन्दिर में श्रीधर (भगवान् विष्णु) आ गये तो उनकी खोज करते-करते भोगीन्द्र शेष शीघ्र ही साथी के रूप में पहुँच गया और सुमित्रा की शय्या पर बाल रूप धारण करके उत्पन्न हो गया। २६६-२६७ सुमित्रा स्वप्न देख रही है कि मेरे एक शुभ लक्षणों से युक्त पुत्र (उत्पन्न) हुआ; वह सावधान (जागृत) हो देखती है (तो उसे दिखायी दिया कि उसके) सामने वह बालक खेल रहा है। २६८ इस प्रकार सुमित्रा के पुत्र का जन्म हुआ तो (वहाँ) विप्रों सहित दशरथ ने आकर तत्काल पुण्याहवाचन, जातक कर्म आदि सब विधियाँ सम्पन्न कीं। २६९

विष्णुचे शंखचक्र-अवतार। परी कैसे जन्मले तो विचार। कैकयीस नेणवे। २७० सुषुप्ती माजी कैकयी निमग्न। जैसा पंकगर्तेत पाषाण। पुत्र येऊनि दोघे जण। दोहींकडे खेळताती। ७१ दासी येऊन कैकयीप्रती। थापटोनि जागी करिती। दोघे पुत्र जन्मले निश्चितीं। सावध होऊनि पाही पां। ७२ कैकयी पाहे पुत्रमुख। तों मित्र आणि मृगांक। तेवीं दोघे खेळती बाळक। देखतां सुख वाटलें। ७३ रायें तेथेंही येऊन। अवलोकिले दोघे नंदन। सुखी केले याचकजन। वस्त्राभरणेंकरूनियां। ७४ बारा दिवसपर्यंत। महोत्साह राव करीत। मंगळतुरें गर्जत। रात्रंदिवस राजगृहीं। ७५ तेरावे दिवशीं वसिष्ठ ऋषी। नामकरण ठेवी चौघांसी। कौसल्येचा राम तेजोराशी। जो वैकुंठवासी जगदात्मा। ७६ सुमित्रेचा नंदन। त्याचें नाम ठेविलें लक्ष्मण। जो काद्रवेयकुलभूषण। विष्णु शयन ज्यावरी करी। ७७ कैकयीचे जे कां सुत। भरत शत्रुघ्न निश्चित। चौघे दाशरथी जगविख्यात। ऐका

कैकेयी के दो पुत्र (उत्पन्न) हुए। वे भगवान् विष्णु के शंख और चक्र के अवतार थे। परन्तु उनका जन्म कैसे हुआ, यह बात कैकेयी को विदित नहीं है। २७० कैकेयी सुषुप्ति में निमग्न थी, जैसे कीचड़ भरे गर्त में पत्थर पड़ा होता है। फिर दो पुत्र उत्पन्न होकर उसके दोनों ओर खेलते हैं। २७१ तो कैकेयी के पास आकर दासियों ने थपकियाँ देकर उसे जगा लिया; तब सावधान होकर उसने देखा कि निश्चय ही दो पुत्रों का जन्म हुआ। २७२ कैकेयी ने पुत्रमुख देखे (तो जान पड़ा कि) सूर्य और चन्द्र-से वे दोनों बालक खेल रहे हैं। उन्हें देखकर उसे सुख (अनुभव) हुआ। २७३ राजा ने वहाँ भी आकर दोनों पुत्रों को देखा और वस्त्रों तथा आभूषणों से याचक-जनों को सुखी कर दिया। २७४ राजा ने बारह दिनों तक महोत्सव मनाया। राजगृह में रातदिन मंगल तुरहियाँ बजती थीं। २७५ तेरहवें दिन वसिष्ठ ऋषि ने चारों (पुत्रों) का नामकरण किया। कौसल्या का पुत्र, जो तेजोराशि, वैकुण्ठवासी जगदात्मा है, राम कहलाया। २७६ सुमित्रा के पुत्र का नाम लक्ष्मण रखा, जो (वस्तुतः) (उस) सर्प-कुल का भूषण है और जिसपर भगवान् विष्णु शयन करते हैं। २७७ कैकेयी के जो (दो) पुत्र हैं वे निश्चय ही भरत और शत्रुघ्न कहाये। जैसे महाप्रचण्ड वायु के चलने लगने पर मेघों का जाल (समूह) बिखर जाता है, वैसे ही जिनकी जन्म और कर्म सम्बन्धी

चरित्र तयांचें। ७८ ज्यांची जन्मकर्मलीला ऐकतां। पळ सुटे सर्व दुरितां। जैसा महाप्रभंजन सुटतां। जलद-जाळ वितळे पैं। ७९ श्रीरामकथा मानसरोवर। तुम्ही संत श्रोते राजहंस चतुर। साहित्यमुक्तें सुढाळ थोर। सेवा निरंतर आदरें। २८० श्रीरामकथा-सुधारस। तुम्ही पंडित श्रोते त्रिदश। प्राशन करा सावकाश। अति सुरस ग्रंथ हा। ८१ पुराणपुरुष परात्पर। तो ब्रह्मानंद श्रीधरवर। अयोध्येंत अवतरला साचार। त्याचें चरित्र परिसा पुढें। ८२ स्वस्ति श्रीरामविजय ग्रंथ सुंदर। संमत वाल्मीकनाटकाधार। सदा परिसोत भक्त चतुर। चतुर्थाध्याय गोड हा। २८३

लीलाएँ सुनते ही सब पाप पलायन को प्राप्त होते हैं (दूर हो जाते हैं), दशरथ के उन जगत् में सुप्रसिद्ध पुत्रों का चरित्र सुनो। २७८-२७९

श्रीराम की कथा मानसरोवर है। तुम सन्त श्रोता (उसमें विहार करनेवाले) चतुर राजहंस हो। साहित्य रूपी बहुत तेजस्वी मोतियों का आदरपूर्वक निरन्तर सेवन करो। २८० (श्रोताओ!) श्रीराम की कथा अमृतरस है; तुम विद्वान् श्रोता देव हो। धीरे-धीरे तुम उस अमृत का प्राशन करो। यह ग्रन्थ सुरस से भरा हुआ है। २८१

पुराणपुरुष परात्पर ब्रह्मानन्द श्रीधरवर (भगवान् विष्णु) सचमुच अयोध्या में अवतरित हुए। आगे उनका यह चरित्र सुनो। २८२

। स्वस्ति। चतुर भक्त वाल्मीकि नाटक पर आधारित और उससे सम्मत यह श्रीरामविजय नामक सुन्दर ग्रन्थ नित्य श्रवण करें। उसका यह मधुर चतुर्थ अध्याय है। २८३

अध्याय—५

श्रीगणेशाय नमः। श्रीसीतारामचंद्राभ्यां नमः। श्रीराम-कथा तेजःपुंज। हेंचि विशाळ दिव्य जहाज। जयासी नव खण सहज। नवविधा भक्तीचे। १ एकएका खणाआंत। बैसले

श्रीगणेशाय नमः ।। श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ।। श्रीराम की कथा तेजःपुंज (अर्थात् अतिशय तेजस्वी) है। यह विशाल दिव्य पोत (बड़ी नौका) है, जिसमें स्वाभाविक रूप में नवविधा भक्ति रूपी नौ

अनुतापी महाभक्त। प्रेमाचें शीड वरी फडकत। पालवीत मुमुक्षूंतें । २ येथें कर्णधार निश्चित। स्वयें जाणिजे श्रीरघुनाथ। तोचि पैलपारासी नेत। निजदासां बैसवूनि। ३ त्या श्रीरामाचें नाम गोड। कथा ज्याची गगनाहूनि वाड। जे लीला ऐकतां पुरे कोड। नलगे चाड आणिकांची। ४ जों जों श्रोते कथेसी सादर। तों तों रस चढे अपार। जैसा पुष्करीं देखतां रोहिणीवर। चंद्रकांता पाझर सुटे। ५ बृहस्पतीसारिखा वक्ता। मतिमंद मिळालिया श्रोता। तैं व्यर्थ गेली ते कथा। जों नाहीं सादरता श्रोतयांसी। ६ जैसें काननामाजी रुदन। कोणी न पुसे तयालागून। तैसें मतिमंदाप्रति श्रवण। करविणें त्याच प्रकारें। ७ जैसीं अन्नें केलीं स्वादिष्ट। परी जेवणार बैसले रोगिष्ट। तरी ते सुगरणीचे कष्ट। शून्यस्थानीं पडिले कीं। ८ षड्रसअन्नें परिकर।

विभाग (बने हुए) हैं। १ प्रत्येक विभाग में अनुतप्त (अर्थात् पूर्व कर्म के लिए पश्चात्ताप से खिन्न हुए) महान् भक्त बैठे (हैं)। ऊपर (भगवत्) प्रेम रूपी पाल इशारे से मुमुक्षुओं को बुलाते हुए फहरता है। २ समझ लो कि यहाँ निश्चय ही नाविक हैं स्वयं रघुनाथ राम। वे ही अपने दासों (सेवकों, भक्तों) को (अन्दर) बैठाकर (भवसागर के) उस पार ले जाते हैं। ३ उन श्रीराम का नाम मधुर है जिनकी कथा आकाश से बड़ी (विशाल) है और जिनकी लीला को सुनने पर (श्रोता की) कामना पूर्ण हो जाती है और (उसे) अन्य किसी के प्रति रुचि नहीं होती। ४ जिस प्रकार आकाश में रोहिणीपति चन्द्रमा को देखने पर चन्द्रकान्त (नामक) रत्न द्रवित होने लगता है, उसी प्रकार, ज्यों-ज्यों श्रोता कथा (श्रवण) के लिए आदरपूर्वक तैयार होते (जाते) हैं, त्यों-त्यों उनका रस (आनन्द) अपार चढ़ता (बढ़ता) जाता है। ५ वक्ता बृहस्पति के समान हो और (उसे) श्रोता मन्द बुद्धिवाला मिला, तो जब श्रोताओं को (कथा-श्रवण के लिए) उत्सुकता नहीं हो, तो वह कथा-कथन व्यर्थ हो गया। ६ जिस प्रकार अरण्य में कोई रुदन करे (रोए), तो उसे कोई पूछता नहीं (अर्थात् उसकी ओर ध्यान नहीं देता), उसी प्रकार मन्दबुद्धि व्यक्ति को कथा श्रवण कराना व्यर्थ है। ७ जिस प्रकार भोज्य पदार्थ तो स्वादिष्ट बनाये, परन्तु भोजन करनेवाले (भोजन करने के लिए) बैठे रोगी लोग; तो उत्तम पदार्थ बनानेवाली उस सुगृहिणी के (पदार्थ बनाने के लिए किये) वे परिश्रम शून्य स्थान में—अर्थात् व्यर्थ हुए। ८

मारीच-सुबाहु-बध

अनन्तरे ऋषि राम लक्ष्मणक लैया * रंगमने तपोबने प्रबेशिल गैया
बिश्वामित्रे बुलिलन्त शुनियोक राम * एहि तपोबन मोर सिद्धाश्रम नाम८९९
मारीच सुबाहु एहि बनेर भितर * आछे दुइरो लगे चैध्य कोटि निशाचर
राखिबा आमार यज्ञ ताक मारि रणे * आनिलो तोमाक मइ एहिसे कारणे९००
राक्षसक मारि दियो आमाक निर्भय * तोमार प्रसादे हौक यज्ञर उदय
शुनि रामचन्द्रे बुलिलन्त एहि हौक * मारिबो राक्षस सुखे यज्ञ करियोक९०१
शुनि मुनिराजर हरिष भैला मने * रामक देखिला आसि यत मुनिगणे
फले मूले दुयो भाइक कराइला भोजन * पाचे तृणशय्यात शुतिला दुयोजन९०२
रजनी प्रभाते उठि मुनिगण यत * स्नान संध्या तर्पण करिया समापत
यज्ञर सम्भार माने एकत्र करिल * शुभक्षणे मुनिगण यज्ञ आरम्भिल९०३
रामक बुलिला बिश्वामित्र मुनिबर * स्नान करि नियमे धरियो धनुशर
शुनि राम लक्ष्मणे करिला गैया स्नान * दुयो भाइ नियमे धरिला धनुर्बाण९०४
अनन्तरे ऋषिराजे करिला सुबेश * मंत्रे राम लक्ष्मणर बान्धिलन्त केश
मणिरत्न कंठा दिला दुयो भाइर गले * ऋषिक पुछिला रामचन्द्र कौतूहले ५
केतिक्षणे आसिबेक राक्षस दुर्ज्जन * ऋषिये बोलन्त राम शुनियो बचन
रात्रिदिने मौन ब्रत दिन छय माने * शर धनु धरि दुयो थाका सावधाने ६

मारीच-सुबाहु का वध

इसके बाद ऋषि ने राम-लक्ष्मण को लेकर सानन्द तपोवन में प्रवेश किया। विश्वामित्र ने कहा, हे राम, सुनो, यही मेरी तपोवन है। इसका नाम सिद्धाश्रम है ॥ ८९९ ॥ इसी वन में मारीच और सुबाहु रहते हैं। उन दोनों के पास चौदह करोड़ निशाचर रहते हैं। उसको युद्ध में मारकर मेरे यज्ञ की रक्षा करना। इसी कारण मैं तुम लोगों को लाया हूँ ॥ ९०० ॥ राक्षस को मार कर मुझको भयशून्य करो। तुम्हारी कृपा से यज्ञ आरम्भ हो जाय। यह सुनकर रामचन्द्र ने कहा, ऐसा ही हो। मैं राक्षस को मारूँगा, तुम आनन्दपूर्वक यज्ञ करो ॥ ९०१ ॥ (यह) सुनकर मन ही मन मुनिराज बड़े खुश हुए। जितने मुनि थे सभी ने आकर राम को देखा। दोनों भाइयों को फल-फूल का भोजन कराया गया। इसके बाद दोनों घास के बने बिस्तर पर लेटे ॥ ९०२ ॥ रात्रि समाप्त हुई, प्रभात होने पर सारे मुनि उठकर स्नान करने गये और संध्या-तर्पण के उपरान्त यज्ञ के सारे उपकरण एकत्र किये। शुभघड़ी देखकर मुनियों ने यज्ञ आरम्भ कर दिया ॥ ९०३ ॥ इसके बाद राम से विश्वामित्र मुनि ने कहा, तुम स्नान कर नियमानुसार धनुष-बाण, का धारण करना। यह सुनकर राम-लक्ष्मण ने जाकर स्नान किया और दोनों भाइयों ने नियमपूर्वक धनुष-बाण ग्रहण किया ॥ ९०४ ॥ इसके उपरान्त ऋषिराज ने मंत्र पढ़कर अच्छे वस्त्र पहनाकर राम और लक्ष्मण के केश बाँधे। दोनों भाइयों के गले में मणिरत्न के बने कंठहार डाल दिये। रामचन्द्र ने कौतूहल-पूर्वक ऋषि से पूछा ॥ ९०५ ॥ हे मुनिवर, वह दुष्ट राक्षस कितनी देर में आएगा? ऋषि ने कहा, हे राम, मेरा कहना सुनो। तुम दोनों रातोंदिन मौन रहकर छह व्रत रखो और सावधानी से धनुष-बाण थामे रहो ॥ ९०६ ॥ वह राक्षस छह दिन

आसिब राक्षस छय दिन अनन्तरे * दुयो भाइ शर करि मारिबा सत्वरे
शुनि धनु धरि राक्षसक बाट चाइ * उजागरे रैला सावधाने दुयो भाइ ७
बिश्वामित्र मुनि यज्ञ करिबाक लैल * आचार्य्य ब्राह्मण तिनि सहस्रेक हैल
मंडल नियमे बेदमंत्र उच्चारिला * सांगोपांगे ईश्वरक पूजिबे लागिला ८
निरन्तरे पूजिलेक छय दिनमान * अग्नि थापिलन्त कुंड करिया निर्म्माण
दिलन्त आहुति आति करि बेदध्वनि * घृतर सुरभी घ्राण उठि गैल छानि ९
अरण्यर परा निशाचर गन्ध पाइल * मारीच सुबाहु यज्ञ बिध्वंसिबे आइल
चैध्य कोटि निशाचर आसिल लगत * मारीच राक्षस आइल सबारो आगत १०
पिचत सुबाहु आसि रैल महाबल * आकाश ब्यापिल येन घोर मेघदल
येन बज्र परे राव तेजे भयंकर * देखि निरन्तरे ऋषि भय भैला बर ११
पाचे राम लक्ष्मणे ऋषिर देखि डर * नाहि भय बुलि आश्वासिला रघुबर
मंत्र पढ़ि रामे शर जुरिला धनुत * देखिया राक्षस भय भैल अदभुत १२
बायुबेगे रामचन्द्रे प्रहारन्त शर * दारुण सन्धाने फुटि मरे निशाचर
बज्रतो अधिक आति रामर सन्धान * एकछोटे राक्षस चलय यमस्थान १३
लक्ष्मणे धरिया धनुशर प्रहारन्त * यम येन खेदि खेदि राक्षस मारन्त
शानत शनाइल शर येन खुरधार * करन्त लक्ष्मणे राक्षसक बुन्दामार १४
निदारुण छोटे मारि गैल यमघर * लक्ष्मणे मारिला आठ कोटि निशाचर
रामर शरत मरि गैल छय कोटि * दुइ भाइ राक्षसक करिला निगुटि १५

के बाद आएगा, तब दोनों भाई बाण चलाकर उसको झटपट मार डालना। यह सुनकर धनुष पकड़कर राक्षस की बाट जोहते दोनों भाई जागते हुए चौकन्ने बने रहे ॥ ९०७ ॥ विश्वामित्र मुनि यज्ञ करने लगे। तीन हज़ार ब्राह्मण आचार्य बने। मंडल के नियमानुसार वे वेदमंत्र का उच्चारण करने लगे। सब लोग समवेत रूप से ईश्वर की पूजा करने लगे ॥ ९०८ ॥ छह दिनों तक वे निरन्तर पूजा करते रहे। कुंड का निर्माण कर उनमें अग्नि की स्थापना की। वेदध्वनि कर उन्होंने आहुति दी तो घृत की सुगन्ध चारों ओर छा गई ॥ ९०९ ॥ जब अरण्य से दूर स्थित राक्षसों को इसकी गन्ध मिली तो मारीच और सुबाहु आए। उनके साथ चौदह करोड़ निशाचर भी आए। राक्षस मारीच उन सब के आगे-आगे आया ॥ ९१० ॥ उसके पीछे-पीछे महाबली सुबाहु भी आकर स्थित हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानों आकाश में घोर बादल छा गये। मानों भीषण शब्द के साथ वज्र गिरने लगे। यह देखकर ऋषियों को बड़ा डर लगा ॥ ९११ ॥ इसके पश्चात् जब राम-लक्ष्मण ने ऋषियों को डरते हुए देखा तो 'डरो नहीं' यह कहकर उनको आश्वासन दिया। मंत्र पढ़कर राम ने धनुष पर बाण चढ़ाया यह देखकर उन राक्षसों के मन में अद्‌भुत भय छा गया ॥ ९१२ ॥ रामचन्द्र ने वायु-वेग से बाण चलाकर प्रहार करना शुरू कर दिया। गजब के निशाने से घायल होकर राक्षस मरने लगे। एक ही चोट में अनेकों राक्षस यमालय जाने लगे ॥ ९१३ ॥ लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर ऐसा प्रहार करने लगे मानों साक्षात् यम ही खदेड़ खदेड़ कर राक्षसों को मार रहे हों। बाण इस प्रकार क्षुर की धार के समान तेज थे मानों शान पर चढ़ाकर धारदार बनाये गये हो। लक्ष्मण ने राक्षसों में मारधाड़ मचा दी ॥ ९१४ ॥ भयानक आघात से मर कर वे राक्षस यमालय जाने लगे। लक्ष्मण ने आठ करोड़ निशाचर मार गिराये। राम के बाणों से छह करोड़ मरे। दोनों भाइयों ने राक्षसों

हेन देखि सुबाहु राक्षस भयंकर * लक्ष्मणक खेदि गैल यम समसर
देखि भल्लशर जुरि लक्ष्मणे गुणत * सन्धाने हानिला सुबाहुर हृदयत १६
महा चोटे फुटिया मरिल दुराचार * परिल भूमित सिटो पर्ब्बत आकार
देखि मारीचर आति क्रोध बर भैल * भयंकर आतासे रामक खेदि गैल १७
हासि रामे पाँच शरे भेदि हृदयक * बायुबाण हानि उरुवाइला मारीचक
ऊद्ध्र्वमुख करि चाहि आछे मुनिगणे * शुकान तृणक येन लै यान्त पवने १८
रामशरे राक्षसक लैं यान्त आकाशे * देखिया त्रिदश देवे खलखलि हासे
महाबेगे गैया सिटो छेराया सागर * हेट माथे लंकात परिल निशाचर १९
भांगि गैल धार मूर भैल छिराछिर * भैल अचेतन बहे बोम्बाले रुधिर
नपावे उशास तेज बहे नाके मुखे * न मरिल कथमपि जील बर दुखे २०
बाण बिषे क्षणे क्षणे होवे श्रुतिहत * राममय मात्र देखे सकले जगत
रामे पाइल बुलि भय होवे स्वपनत * राघवर शरे लैया फुरे आकाशत २१
सपोन सचिते सिटो राम बिने आन * नेदेखय रामत लागिल येन ध्यान
नजाय नुपुहाय तार रामर भयत * एरिल मारीचे बिषयर भोग यत २२
सेहि धरि बिदाय लइया रावणत * तप हेतु चलि गैया रहिल बनत
राम लक्ष्मणर देखि विक्रम साक्षात * पुष्प बरिषिला देवे दुइरो माथात २३
अद्भुत महिमा देखि राम लक्ष्मणर * भैलन्त बिस्मय मुनिगण निरन्तर
दुइ भाइक प्रशंसा करिला बहुतर * धन्य राम लक्ष्मण सार्थक धनुर्द्धर २४

को मारकर निर्मूल कर दिया ।। ९१५ ।। ऐसा देखकर भयंकर राक्षस सुबाहु यम के समान लक्ष्मण की ओर लपका। यह देखकर लक्ष्मण ने प्रत्यंचा पर मल्लशर साधा और सुबाहु के वक्ष का निशाना साधकर मारा ।। ९१६ ।। इस भीषण प्रहार से वह दुष्ट घायल होकर मरा। वह पर्वत के समान आकार धारण करके भूमि पर जा गिरा। यह देखकर मारीच को बड़ा क्रोध आया। वह भयंकर चीत्कार के साथ राम की ओर लपका ।। ९१७ ।। तब हँसकर राम ने पंचशर से उसका हृदय बींध दिया। फिर वायु-बाण चलाकर मारीच को हवा में उड़ा दिया। सारे मुनि मुँह ऊपर उठाये ताक रहे हैं—"मानों तिनके को हवा उड़ाये ले जा रही है" ।। ९१८ ।। राम का बाण राक्षस को हवा में उड़ाये लिये जा रहा है यह देखकर देवता खिलखिला कर हँस पड़े। तीव्र गति से उड़ता हुआ वह राक्षस सागर को पार करके मुंह के बल लंका में जा गिरा ।। ९१९ ।। उसके सिर और गर्दन आदि अंग टूट गये और शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। वह अचेतन हो गया और शरीर से खून बहने लगा। नाक-मुँह से तेजी से वह साँस नहीं ले पा रहा है। किसी प्रकार से वह मर तो न सका लेकिन बड़ी ही यातना लेकर जीवित रहा ।। ९२० ।। बाण के विष से बीच-बीच में उसे कुछ सुनाई न पड़ा। वह सारे-संसार को राममय देखने लगा। राम आया है यह सुनकर उसको सपने में भी डर लगने लगा। राम का बाण उसको लेकर आकाश में फिरता रहा ।। ९२१ ।। चाहे सपने में हो चाहे सचेत, उसे राम के बिना कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता था, मानों वह राम ही के ध्यान में रम गया हो। राम के प्रति उसका भय न तो जाता और न समाप्त होता। मारीच ने विषय का भोग करना भी त्याग दिया ।। ९२२ ।। मारीच ने रावण से बिदा ले ली और तपस्या करने के लिए वन में जाकर रहने लगा। राम-लक्ष्मण का पराक्रम प्रत्यक्ष देख कर देवता दोनों के सिर पर पुष्पवर्षा करने लगे ।। ९२३ ।। राम-लक्ष्मण की अद्भुत महिमा देखकर समस्त मुनि निरन्तर विस्मित होते रहे।

ईषत कटाक्षे दुयो करि महालीला * चैध्य कोटि राक्षस क्षणेके संहरिला
कर्म्म देखि जानिलोहो नुहिका मानुष * भैला अवतार हरि परम पुरुष २५
राक्षस मारिया भार करिबा निर्व्वाण * साधिबाहा जगतर परम कल्याण
यार नामे सांग होवे धर्म्म कर्म्म यत * हेन तुमि भैला आसि सहाय यज्ञत २६
जानिलोहो आमार भाग्यर नाहि सीमा * एहिमते दुहान्तरो बखानि महिमा
मुनिगण समे विश्वामित्र महाऋषि * पूर्ण दिया यज्ञ सांग करिला हरिषि २७
अग्नि बिर्सज्जिया पाचे दक्षिणा करिला * राम लक्ष्मणक सबे आशीर्ब्बाद दिला
विश्वामित्र मुनिर हरिष अति मन * परमान्ने भोजन कराइला मुनिगण २८
दाने माने समस्तरे मन सन्तोषिला * सुवर्ण रजत बस्त्र गावे गावे दिला
भैलन्त सन्तुष्ट मुनिगण निरन्तर * रंगमने चलि गैला आपोनार घर २९
रामर प्रसादे विश्वामित्र मुनिबर * यज्ञ सांग करि भैला हरिष बिस्तर
हाते लुंडि घुंडि अति दुइहन्तर गावे * आशीर्ब्बाद करि बुलिलन्त बहुभारे ३०
तुमि नारायण देव अनादि अनन्त * तूमिसे यज्ञर फलदाता भगवन्त
तुमिसे आपुनि धर्म्म कर्म्म यज्ञ यत * जानि सर्मपिलो यज्ञ तयु चरणत ३१
तुमि केवल सत्य बोलो परमार्थ * तोमार प्रसादे राम भैलोहो कृतार्थ
तोमार बिनाइ आन सबे ब्यवहार * ताके प्रवर्त्ताइबे प्रति भैला अवतार ३२
आपुनि आचारी धर्म्म मनुष्यर नय * तोमाक ईश्वर बुलि केहो नजानय
योगबले छद्म हुया आछा महाशय * ब्यवहार पालिबाक आमार लागय९३३

उन्होंने दोनों भाइयों की भूरि-भूरि प्रशंसा की—राम-लक्ष्मण दोनों धन्य हैं—वे सार्थक धनुर्धर हैं ।। ९२४ ।। दोनों ने अपने नेत्रों के कटाक्षमात्र से ही यह महालीला की, चौदह करोड़ राक्षसों को क्षण भर में मार गिराया । इनके कार्य देखकर मालूम हो गया कि ये मनुष्य नहीं हैं । परमपुरुष श्रीहरि ने ही अवतार लिया है ।। ९२५ ।। राक्षसों को मार कर ये पृथ्वी का बोझ हल्का करेंगे और जगत् का परम कल्याण करेंगे । जिनका नाम लेते ही सारे धर्म-कर्म के फलों की प्राप्ति हो जाती है—ऐसे तुम सशरीर आकर यज्ञ में सहायक बन गये ।। ९२६ ।। हमने यह भलीभाँति जान लिया कि हम लोगों के भाग्य की कोई सीमा नहीं । इस प्रकार से उन दोनों की ही महिमा बखानी गई तथा समस्त मुनियों के साथ महाऋषि विश्वामित्र ने पूर्णाहुति देकर यज्ञ समाप्त किया ।। ९२७ ।। अग्नि का विसर्ज्जन कर उसकी प्रदक्षिणा की । सभी ने राम-लक्ष्मण को आशीर्वाद किया । विश्वामित्र मुनि बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने परमान्न बनाकर सभी मुमियों को भोजन कराया ।। ९२८ ।। दान और मान के द्वारा सभी को सन्तुष्ट किया । प्रत्येक को स्वर्ण, रजत और वस्त्र प्रदान किया । सभी मुनि बड़े सन्तुष्ट हुए और आनन्दित होकर अपने घर चले गये ।। ९२९ ।। राम की कृपा से मुनिवर विश्वामित्र यज्ञ समाप्त कर बड़े हर्षित हुए । दोनों के बदन को अपने हाथों से सहलाते हुए कितने ही प्रकार से वे उनको आशीर्वाद देते रहे ।। ९३० ।। हे देव नारायण, तुम अनादि अनन्त हो । हे भगवन्, तुम्हीं यज्ञ के फलदाता हो । तुम्हीं स्वयं धर्म-कर्म तथा यज्ञ आदि हो यह जानकर मैं तुम्हारे चरणों में यज्ञ सर्मपित करता हूँ ।। ९३१ ।। हे परमार्थ, केवल तुम्हीं सत्य बोलते हो । हे राम, तुम्हारी कृपा से हम कृतकृत्य हुए । तुम्हारे आधार पर ही सारे आचरण हैं । उसी को प्रवर्त्तित करने के लिए ही तुमने अवतार ग्रहण किया ।। ९३२ ।। तुम स्वयं ऐसे धर्म का आचरण करते हो जो मनुष्य नहीं

यज्ञ रक्षा करि हित करिला आमाक * उचित प्रसाद आवे कि दिबो तोमाक

सीतार स्वयम्बरलै बिश्वामित्र मुनिर लगत राम-लक्ष्मणर गमन

एहि बुलि मने गुणिलन्त मुनिबर * उपजिया आछे लक्ष्मी जनकर घर ९३४
येहि येहि रूपे अवतार हन्त हरि * उपजन्त लक्ष्मी देवी सेहि रूप धरि
रामरूपे नारायण आछन्त साम्प्रत * सीतारूपे लक्ष्मी आछा जनक घरत ३५
निश्चये हैवन्त सीता भार्या राघवर * जनक नृपति पाति आछे सयम्बर
राम लक्ष्मणक मिथिलाक लैया जाओं * सीता समे राघवर बिबाह कराओं ३६
हेन मने गुणि मुनि करिलन्त सार * रामक बोलन्त शुना बचन आमार
मिथिला नगरे आछे जनक नृपति * राजऋषि धर्म्म आचरन्त महामति ३७
पुत्रवते प्रजाक पालन्त नृपवर * सीता नामे आछे तान दुहिता स्नेहर
अयोनिका रूपे आछे जनकर घरे * येन अमृतर घट दुगुध सागरे ३८
त्रैलोक्य मोहिनी कन्या परम सुन्दरी * किबा लक्ष्मी पार्ब्बती आछन्त मूर्त्ति धरि
जानकीर रूपर नाहिके पटन्तर * देखि चूर होवे यत दर्प कन्दर्पर ३९
मुनिमनमोहन बदन रुचिकर * देखि लाजे थिर नथाकन्त शशधर
नयनक देखि आतिशय पाया लाज * पलाइ गैया कमल थाकिल जलमाज ४०

कर सकते। तुमको ईश्वर के रूप में कोई नहीं जानता। हे महाशय, तुम योगबल से छद्मवेश धारण किये हुए हो। व्यवहार का पालन करने के लिए ही मेरे साथ आए हो ॥ ९३३ ॥ यज्ञ की रक्षा कर तुमने मेरा उपकार किया। बताओ तुमको अब इसके लिए कौन सा उचित प्रसाद दें।

सीता के स्वयम्बर में विश्वामित्र मुनि के साथ राम-लक्ष्मण का जाना

यह कहकर मुनिवर ने मन ही मन ध्यान लगाया तो ज्ञात हुआ कि जनक के घर लक्ष्मी जन्म लेकर बैठी है ॥ ९३४ ॥ जिस-जिस रूप में हरि अवतार लेते हैं, लक्ष्मी देवी भी उसी-उसी रूप में अवतार लेती हैं। सम्प्रति नारायण राम का रूप धारण किये हुए हैं और सीता का रूप लिये लक्ष्मी जनक के घर में हैं ॥ ९३५ ॥ निश्चित रूप से सीता राम की भार्या बनेगी। राजा जनक ने स्वयंवर रच रखा है। राम-लक्ष्मण को मिथिला ले जाऊँ और सीता के साथ राम का विवाह करा दूँ ॥ ९३६ ॥ मन में ऐसा सोचकर मुनि ने निश्चय कर लिया। राम से कहा, मेरा वचन सुनो। मिथिला नगरी में जनक राजा हैं। वे महामति राजऋषि का धर्म निभाते हैं ॥ ९३७ ॥ वे नृपवर प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हैं। सीता नामक उनकी एक स्नेहमयी कन्या है। वे अयोनिसम्भवा के रूप में जनक के घर में इस प्रकार हैं जिस प्रकार दूध के समुद्र में अमृत से भरा घट हो ॥ ९३८ ॥ वह कन्या त्रैलोक्य-मोहनी और परम सुन्दरी है। ऐसा लगता है मानों मूर्त्तिमती लक्ष्मी या पार्वती हों। जानकी के रूप की कोई तुलना नहीं। उनको देखकर कन्दर्प का सारा दर्प चूर-चूर हो जायगा ॥ ९३९ ॥ उनका रुचिकर मुखड़ा मुनियों का मन भी मोह लेता है जिसको देखकर चन्द्रमा भी लज्जा से स्थिर नहीं रह सकता। उनके नयनों को देख लज्जित हो कमल भाग कर जल के बीच रहने लगा ॥ ९४० ॥ उनकी नाक का सौन्दर्य रत्न के बने तिलफूल जैसा है। उनके

रत्न तिलफुल जिनि नासा करे कान्ति * प्रकाशे दशन जिनि मुकुतार पान्ति
भ्रुव सुवलित मदनर धनु सम * कपालत सुन्दर तिलक मनोरम ४१
हास्यत बरिषे येन अमृत प्रचुर * नयने काजल ज्वले शिखत सिन्दुर
दीर्घ केशचय जिनि आछे चामरक * भ्रमरार शारी येन कुटिल अलक ४२
बिम्बफल अधिक अधर मनोहर * अमृत सुरस बाणी स्वर कोकिलर
नयनर प्रान्ते येन दलित अंजन * मदनर शर येन कटाक्ष इक्षण ४३
समान कर्णर तले कुंडल ज्वलय * उपरत चाकि चिकिमिकि प्रकाशय
कुंडलर कान्ति गंडस्थले प्रकाशित * गले गलपाता मणिमय मनोनीत ४४
सुवलित भुजयुग देखि लाज पाइ * थाकिल मृणाल गैया पंकजे लुकाइ
बाहुत बाहुति शांख दुयो हाते आछे * रत्नमय बलया कंकन आगे पाचे ४५
सुन्दर आंगुलि पान्ति ललित बलित * सुवर्णर आङठि प्रत्येक आंगुलित
मणि चन्द्र सम नख परम उज्ज्वल * कर किशलय तुल रातुल कमल ४६
हृदयत बाढ़े स्तन बदरी समान * दरशने युवतर हरय पराण
स्तन मध्ये शोभा करे सातसरि हार * कांचने रचित मणि माला मुकुतार ४७
सुबिपुल नितम्बक देखिते सुबेश * हरर डम्बरू येन क्षीण मध्यदेश
कुन्दत कुन्दला येन मुठिते लुकाय * बतासेते हाले भागि परिल पराय ४८
रत्नर मेखला ज्वले खोंचार उपर * सुवलित उरु रामकल समसर
याक देखि स्तम्भि रहे मदनर मन * नव पद्मकोष येन दुखानि चरण ४९

दन्त यों शोभा पाते हैं मानों मोतियों की पाँति हों। भौंहें मदन के धनुष के समान सुघर हैं और उनके माथे पर मनोरम व सुन्दर तिलक लगा है ।। ९४१ ।। उनके हास्य से मानों अत्यधिक अमृत बरसता है। उनके नयनों में काजल प्रकाश देता है तो शिखा में सिन्दूर। चँवर को नीचा दिखाते हुए उनके लम्बे केश हैं। उनकी कुटिल अलकें मानों भौंरों की पाँत हों ।। ९४२ ।। उनके अधर विम्बफल से अधिक मनोहर हैं। उनकी वाणी अमृत जैसी रसभरी है और स्वर कोकिल सा है। नयनों के सिरों पर मानों अंजन लगाया गया हो। उनका कटाक्षपूर्वक देखना मानों मदन का बाण चलना हो ।। ९४३ ।। एक ही समान दोनों कर्णों के नीचे कुंडल चमक रहे हैं। ऊपर जूड़ा चमचमा रहा है। गाल पर कुंडल की कान्ति प्रकाशित है। गले में मणिमय मनोज्ञ गलपाता (आभूषण) है ।। ९४४ ।। सुडौल दोनों बाँहों को देखकर मृणाल लज्जित होकर पंकज में जाकर छिप गया। दोनों हाथों में शंख का बना वलय (कंकण) है और उसके आगे-पीछे रत्न के बने कंगन हैं ।। ९४५ ।। ऊंगलियों की पाँति बड़ी ही ललित व वलित हैं। प्रत्येक ऊंगली में सोने की अंगूठी हैं। नाखून चन्द्रमणि जैसे उज्वल हैं। कोंपल जैसे कर मानों लाल-कमल हों ।। ९४६ ।। वक्ष पर बेर के समान स्तन बढ़ रहे हैं जिनके दर्शन से युवकों के प्राण मुग्ध हो जाते हैं। स्तनों के बीच सात हारों की लड़ियाँ शोभा देती हैं। वह मणिमाला कांचन से बनी हुई है जिसमें मोतियाँ पिरोयी गई हैं ।। ९४७ ।। उसका विशाल नितम्ब भी देखने में इस प्रकार सुंदर लगता है मानों शंकर का डमरू हो। उसका मध्यदेश ऐसा क्षीण है जैसे खराद पर चढ़ाकर ऐसा सुडौल बनाया गया है कि मुट्ठी में आ जाय। हवा के चलने पर वह उसका तन इस प्रकार हिलने लगता है मानों उड़कर अभी कहीं जा गिरेगा ।। ९४८ ।। कमर पर रत्न की बनी करधनी चमकती है। सुडौल जाँघें मानों बृहद केले के खम्भे हों जिनको देखकर मदन का भी मन स्तम्भित रह

माणिक मंजिर रुणजुन करि बाजे * सुवर्ण उज्झटि दश आंगुलिर माजे
पदतल रातुल कमल आतिशय * फुटि येन साक्षाते रुधिर बाज हय ५०
प्रथम यौवनी राजहंसर गमनी * सर्ब्बांग सुन्दरी कन्या आति बितोपनी
त्रैलोक्यर रूप हुया आछे एकखान * अनेक यतने बिधि करिला निर्म्माण ५१
आति शुभान्विता जनकर जीउ सीता * विष्णुत भकत सर्ब्बगुणे आनन्दिता
आन एको नाहि तान हरिचिन्ता बिने * येन चन्द्रकला बाढ़ि यान्त दिने दिने ५२
रूपगुण सीतार करिबे कोने सीमा * स्रजिया थैलन्त बिधि मोहन प्रतिमा
गुणन्त मनत बसि जनक नृपति * कमन बरत बिहा दिबो सीता सती ५३
सर्ब्बसुलक्षणी कन्या परम सुन्दरी * इहान समान बर पाइबो केने करि
गुणि गुणि राजा पाचे करिलन्त सार * मृग मारि महादेवे द्वारत आमार ५४
धनु एरि पूर्ब्बकाले गैला महाशय * ताते यिटो जने गुण दिबाक पारय
इटो लक्ष्मीसमा कन्या बिहा दिबो तात * एहि अंगीकार राजा करिला साक्षात ५५
आलोचिया मने जानकीर सयम्बर * मिथिलात सभा पातिलन्त नृपबर
बिश्वकर्म्मा सम शिल्पी आनि सर्ब्बजन * कराइलन्त पुर चित्र मन्दिर निर्म्माण ५६
अनेक उच्छ्रित गृह बहल बिस्तर * प्रकाश करय येन कैलाश शिखर
सुबर्ण रजत रत्ने करिला आरम्भ * अनेक सहस्र फटिकर दिला स्तम्भ ५७
हीरा मणि माणिक लगाइला थाने थाने * करिला अनेक शिल्पी जानिलेक माने
नाना रत्ने चिकिमिकि करे ठाइ ठाइ * सूर्य्यर ज्योतिक येन चाहन नयाय ५८

जाता है। दोनों चरण मानों नये कमल-कोष हों ।। ९४९ ।। माणिक्य की बनी पैंजनियाँ झुन-झुन बजा करती हैं। सुवर्ण की बनी उजंटी नामक अलंकार दस उँगलियों में शोभित है। पदतल मानों रक्त कमल हो या मानो खून फूटकर निकल रहा हो ।। ९५० ।। उस प्रथम यौवनवती सीता की चाल राजहंस जैसी है। वह कन्या सर्वांगसुन्दर और अति श्रेष्ठ है, मानों त्रैलोक्य का रूप एक ही स्थान में एकत्र है। विधि ने बड़े ही यत्न से इसका निर्माण किया है ।। ९५१ ।। जनक की बेटी सीता बड़ी ही कल्याणी है। वह विष्णु की भक्त है और सभी गुणों से समन्वित है। हरि के चिन्तन के सिवा उसका दूसरा कोई काम नहीं। वह चन्द्रकला के समान दिन व दिन बढ़ती जा रही है ।। ९५२ ।। सीता के रूप और गुणों को कौन सीमित कर सकता है। ब्रह्मा ने मानों मोहन-प्रतिमा का सर्जन कर रखा है। राजा जनक मन ही मन बैठे सोच रहे हैं कि सती सीता का विवाह कैसे वर से करूँ ।। ९५३ ।। सारे सुलक्षणों से युक्त यह कन्या परमसुन्दरी है इसके योग्य वर कहाँ पा सकता हूँ। काफी सोचने के उपरान्त राजा ने निश्चय किया कि मृग को मार कर महादेव मेरे द्वार पर—।। ९५४ ।।—धनुष छोड़कर प्राचीन काल में चले गये। उस पर जो प्रत्यंचा चढ़ा पाएगा उसी से इस लक्ष्मी के समान बेटी का विवाह करूँगा ।। ९५५ ।। मन ही मन जानकी के स्वयंवर की बात सोचकर नृपवर ने मिथिला में सभा बुलाई। विश्वकर्मा के समान सारे कारीगरों को बुलवा-कर चित्र के समान पुरी और मन्दिरों का निर्माण कराया ।। ९५६ ।। अनेक ऊँचे-ऊँचे गृह अनेक संख्या में कैलाश शिखर जैसे शोभा पाने लगे। सोने, चाँदी और रत्नों से उसने इसके निर्माण का आरम्भ किया और हजारों स्फटिक के खम्भे बने ।। ९५७ ।। स्थान-स्थान पर हीरा, मणि, माणिक्य आदि लगाये गये। कारीगरों ने सम्मान प्रदर्शित करते हुए बहुत कुछ किया। विभिन्न रत्नों से प्रत्येक स्थान

सुवर्णे रजते बिरचिल स्थली यत * थाने थाने मंच सजाइलन्त नाना मत
राजाक उचित सिंहासन थैला पारि * नानाबिध आसन थापिला शारी शारी ५९
राजागण रहिबाक प्रति नृपबर * नाना स्थाने सजाइलन्त यत बासाघर
भोजन सम्भार बहुबिध उपहार * भराइ थैलन्त राजा अनेक भंडार ६०
अनन्तरे माति आनि दूत बहुतर * समस्तके बचन बुलिला नृपबर
देशे देशे यत राजा आछे निरन्तर * समस्तके कह जानकीर सयम्बर ६१
शुनि दशोदिशे दूत गैल असंख्यात * घोषिलेक सयम्बर समस्ते राजात
जानकीर सयम्बर शुनि राजा यत * अमृत पिलेक येन हरिष मनत ६२
बस्त्र अलंकार दिया दूतक सादरि * पुछय सीतार कथा कह भाल करि
शुनि दूते रूपगुण बर्णावे सीतार * कथाते हरय मन सकले राजार ६३
मने गुण केनमते पाइबो जानकीक * तान्त बिने जीवन यौवन धिक धिक
एहि बुलि राज्यभार भार्य्या परिहरि * चतुरंग सेना समे चले शीघ्र करि ६४
याहन्ते गुणय पथे मने अवगाइ * जानो आगे बिहा करे मोके आगे पाइ
मइ आगे पाओं येवे नतु पावे आने * मोर आगे सीताक निबेक कार प्राणे ६५
रूपे गुणे समस्ते राजात मइ चार * मोते बरिबेक भाग्य आछय आमार
जनक नृपति भाले जानन्त आमाक * अवश्ये मोतेसे बिहा दिबन्त सीताक ६६
एहि गुणि रात्रि दिने पथ बाहि जाय * उगुल-थुगुल मने सुख-शान्ति नाइ
हस्ती घोरा रथे राजागणे निरन्तरे * मिथिला पशिल गैया महा आडम्बरे ६७

जगमगाने लगा मानों सूर्य की ज्योति हो, उस ओर देखा नहीं जाता ।। ९५८ ।। सोने और चाँदी से विभिन्न स्थलों की रचना की गई। विभिन्न प्रकार के मंच स्थान-स्थान पर बनाये गये। राजा के योग्य सिंहासन स्थापित किये गये—और विभिन्न प्रकार के आसन जगह-जगह पर स्थापित किया गया ।। ९५९ ।। नृपवर ने राजाओं के रहने के लिए जगह-जगह पर निवास स्थानों का निर्माण कराया। भोजन आदि पदार्थों और उपहारों से राजा ने अनेक भंडार भरवा दिये ।। ९६० ।। इसके बाद बहुत से दूतों को बुलाकर नृपवर ने कहा, देश-देश में जितने राजा हैं, सबसे जाकर बता दो कि जानकी का स्वयंवर है ।। ९६१ ।। यह सुनकर असंख्य दूत दशों दिशाओं में चले गये और राजाओं में उन्होंने स्वयंवर की घोषणा कर दी। जब जानकी के स्वयंवर की बात सुनी तो राजाओं ने मानों हर्ष से अमृत पा लिया ।। ९६२ ।। उन्होंने दूतों को वस्त्र अलंकार आदि देकर उनसे सादर पूछा कि तुम सीता के बारे में अच्छी तरह से बताओ। यह सुनकर दूत सीता के रूप और गुण की वर्णना करने लगते और अपनी बातों से सभी राजाओं के मन को हर लेते ।। ९६३ ।। मन ही मन वे सभी राजा लोग चिन्ता करते कि जानकी को किस प्रकार से प्राप्त किया जाय। उसके बिना इस जीवन और यौवन को धिक्कार है। यह कहकर राज्य का भार और अपनी भार्या को त्यागकर, चतुरंग सेना साथ लेकर वे चल पड़े ।। ९६४ ।। जाते समय पथ में मन ही मन में यह सोचते जाते कि सीता मुझ ही से पहले ब्याह करले, मैं ही उसे पहले पा जाऊँ। मुझ ही को वह पहले मिलेगी, किसी दूसरे को नहीं। मुझसे पूर्व सीता को लेने की हिम्मत किसको पड़ेगी ।। ९६५ ।। रूप और गुणों में मैं सभी राजाओं में सुपटु (श्रेष्ठ) हूँ। मेरा ही वह वरण करेगी—मेरा ही भाग्य ऐसा है। राजा जनक मुझको अच्छी तरह से जान लें तो अवश्य ही मेरे साथ सीता का विवाह कर देंगे ।। ९६६ ।।

आकाशमां एक देखाये, बीजो सुतने मुखे,
निशाकर जुग्म देखी भूल्या नृप भर्म विषे । ११ ।
पुत्र लीधो पारणामांथी दशरथराय जी,
लेईने मंदिरमां आव्या, विस्मे घणुं थाय जी । १२ ।
रूप जोई रीझ्या राजा, ए सुंदर श्यामनुं,
जेवुं हतुं तेवुं दीठुं मुख श्रीरामनुं । १३ ।
गुरुने तेडावीने पूछ्युं ब्रह्मपुत्र बोलिया,
वसिष्ठे विचारी लीला, मग्न थई डोलिया । १४ ।
अरे नृप ए सुत जाणो, नारायण रूप छे,
अलौकिक लीला करशे, त्रिभुवनभूप छे । १५ ।
मुखमांहे चंद्रज दीठो माटे कारण कहुं,
आजथी नामज एनुं रामचंद्र कहो सहु । १६ ।
भूप सुणी आनंद पाम्या, दान घणां आपियां,
एवी नित्य नवी लीला जोई सुख व्यापियां । १७ ।
एक समे राय रमाडे ते पूरणकामने,
चोकमां चोकी उपर बेठा लेई रामने । १८ ।

आकाश में एक (चन्द्र) दिखायी दिया (और) दूसरा पुत्र के मुख में (दिखायी दिया)। चन्द्रों की जोड़ी देखकर राजा भ्रम में (पड़कर) भान भूल गये । ११ । राजा दशरथ ने पुत्र को पालने में से (निकाल) लिया (और उसे) लेकर वे मन्दिर (प्रासाद) में आ गये। उन्हें (तब) बहुत विस्मय होता है (हुआ था)। १२ । सुन्दर श्याम (वर्ण के पुत्र) का यह रूप देखकर राजा प्रसन्न हो गये। (फिर) श्रीराम का मुख पहले जैसा था, वैसा देखा । १३ । उन्होंने गुरु को बुलाकर पूछा, तो (ब्रह्मदेव के पुत्र) वसिष्ठ बोले—वसिष्ठ तो इस लीला का विचार करके मग्न होकर डोलने (झूमने) लगे। (उन्होंने कहा)—हे राजा, यह पुत्र नारायण-रूप समझो। यह अलौकिक लीला करेगा, यह त्रिभुवन का राजा (जो) है । १४-१५ । इसके मुख में चन्द्र ही देखा, इस कारण, मैं कहता हूँ, आज से (तुम) सब इसका नाम ही 'रामचन्द्र' कहो । १६ । (यह) सुनकर राजा को आनन्द (प्राप्त) हुआ। उन्होंने बहुत दान दिये। इस प्रकार नित्य नयी-नयी लीला देखकर (उनके मन में) सुख व्याप्त हुआ । १७ । एक समय उस पूर्णकाम (पुत्र) को राजा खेलाते हैं (थे)। राम को लेकर वे आँगन में चौकी पर बैठे । १८ । सबेरे नगर की स्त्रियाँ आकर उसे बुलातीं। वे करोड़ों कामदेवों की-सी राम की छबि को

प्रात:समे नगर-नारी आवीने बोलावती,
रामछबी कंदर्प कोटी जोवा मिष आवती । १९ ।
प्रभु किलकारी करता समजाय न वेणमां,
अंतरनो नेह जणावे पोतानां नेणमां । २० ।
ओवारणां लेई जाये जोई रघुवर रामने,
वळी बीजी बाळा आवे मूकी घरकाजने । २१ ।
सखी प्रत्ये सखी कहे छे सुण मारी मावडी,
राजदरबारमां गई'ती जोई आवी आ घडी । २२ ।
आंगणे भूपति बेठा लेई श्रीरामने,
शी कहुं रूपनी शोभा लजावे कामने । २३ ।
नाजुक आभूषण ओपे कंचन हीरे जडचां,
चपळ चक्षु मीन जाणे सुधारसमां पडचां । २४ ।
मुख शशी कंज लजावे कुंडळ छे कानमां,
नेत्रना चाळा करी समजावे सानमां । २५ ।
खीटलियाळा केश झूमे लांछन मुखचंद्रना,
जाणे आव्या अमृत पीवा बाळक फणींद्रनां । २६ ।

देखने के बहाने आया करतीं । १९ । (उस समय) प्रभु श्रीराम (ऐसे शब्दों में) किलकारी किया करते, जो समझ में न आती । वे हृदय का स्नेह अपनी आँखों द्वारा दिखाते । २० । रघुवीर राजा श्रीराम को देखकर वे बलैया लेकर चली जाती हैं । तत्पश्चात् (कोई) दूसरी बाला (स्त्री) घर के काम को छोड़कर आती है । २१ । (एक) सखी (दूसरी) सखी से कहती है—मेरी मैया, सुनो, मैं राज-दरबार में गयी हुई थी । इस घड़ी (समय) देखकर आयी । २२ । आँगन में राजा श्रीराम को लेकर बैठे (हुए थे) । उन (श्रीराम) के रूप की शोभा क्या कहूँ ? वह (तो) कामदेव को लज्जित करती है । २३ । (उन्हें पहनाये हुए) सोने और हीरे से जड़े कोमल आभूषण शोभायमान हैं । (उनकी) चंचल आँखें (ऐसी हैं) मानो अमृत रस में मछलियाँ पड़ी हों । २४ । (उनका) मुख चन्द्र और कमल को लज्जित करता है । (उनके) कानों में कुण्डल हैं । नेत्रों से इशारे करके संकेत से (वे) समझाते हैं । २५ । घुँघराले बाल (उनके) मुख-चन्द्र पर (चन्द्र में दिखायी देनेवाले) लांछन (दाग)—से झूमते हैं । जान पड़ता है कि (उन बालों की लटों के रूप में) फणीन्द्र शेष (भगवान्) के बालक (—मुख रूपी चन्द्र में स्थित) अमृत पीने के लिए आये (हों) । २६ । झालर और मोतियों की (—से युक्त)

टोपी शिर उपर झळके झालर मोती तणी,
जुगरद मुखमां चळके जाणे हीराकणी! । २७ ।
अंगोअंग मीनकेतन वरसी रह्यो वास करी,
रूपना भूप शिरोमणि जोतां मारी आंख ठरी । २८ ।
ठगारी शी हुं ठगाइ, नेत्र आनंदमां,
भली भली भामा भूले भ्रूकुटि फंदमां । २९ ।
संसारनां कारज सरवे भूली एने भजुं,
नर जोइ मोह पामे नारीनुं शुं गजुं? । ३० ।
बेनी में तो ज्यारनुं जोयुं रघुवर रूपने,
ज्यांहां जोउं त्यांहां देखुं ए रूपना भूपने । ३१ ।
दशरथ कौशल्यानां सुकृत उदे थयां,
पुण्यतरु प्रफुल्ल थयां पुत्र-फळ आवियां । ३२ ।
एम सहु पुरनी नारी गाये गुणग्रामने,
आवे नित राजद्वारे नीरखवा रामने । ३३ ।
मणिबंध आंगणामांहे रमे प्रभु रीझमां,
क्यारे वढे क्यारे पडे क्यारे रडे खीजमां । ३४ ।

टोपी (उनके) सिर पर झलकती है। मुख में दो दँतियाँ चमकती हैं, मानो (वे) हीर-कनियाँ हों। २७। (जान पड़ता है उनके) अंग-अंग में मीन-केतन अर्थात् कामदेव निवास करके रह गये। रूप के राजाओं में शिरोमणि सदृश श्रीराम को देखते-देखते मेरी आँखें तृप्त हो गयीं। २८। दूसरों को ठगनेवाली मैं ख़ुद आँखों को प्राप्त आनन्द में ठग गयी—स्तब्ध हो गयी। बड़ी-बड़ी (चतुर) स्त्रियाँ (उनकी) भौंहों के फँदे में उलझ जाती हैं। २९। घर-गिरस्ती के सब काम भुलाकर मैं उनको भजती हूँ। (जब) पुरुष (उन्हें) देखकर मोह को प्राप्त हो जाते हैं (मोहित हो जाते हैं), तो नारी की क्या बिसात (जो उन्हें देखकर मोहित न हो जाए)। ३०। हे सखी! मैंने जब से रघुवर का रूप देखा, तब से जहाँ देखूँ, वहाँ रूप के इस राजा (श्रीराम) को देखती हूँ। ३१। दशरथ-कौशल्या के सुकृत (किये हुए पुण्य कर्म इन पुत्रों के रूप में) उदित हुए। (उनके) पुण्य-रूपी वृक्ष प्रफुल्लित हुए; (और उनमें) पुत्र रूपी फल आ गये। ३२। इस प्रकार नगर की सब स्त्रियाँ श्रीराम के गुण-ग्राम (समूह) का गान करती हैं। वे नित्य राज (प्रासाद के) द्वार पर श्रीराम को देखने के लिए आती हैं। ३३। रत्न-जटित आँगन में प्रभु श्रीराम प्रसन्नतापूर्वक खेलते हैं। कब (कभी)

जानु करवडे चाले घूघरी गाजती,
पाये नेपूर कटिए किंकणी वाजती । ३५ ।
पीतजधुलियुं पहेर्युं घनश्याम अंगमां,
जरकसी कोर्यो झळके बुट्टा बहु रंगमां । ३६ ।
टोपी शिर उपर शोभे कुंदन मढावनी,
रुदे पर चोकी चळके दीपक जडावनी । ३७ ।
मोतीनां कुंडळ काने सोहिये कर सांकळां,
प्रतिबिंब आभूषणनां एक एकमां मळ्यां । ३८ ।
सिंहनख सोने मढचा हालरुं ओपतुं,
उर आकाश मणि रंग ग्रह द्युति लोपतुं । ३९ ।
बाळविधु आनन उपर केश झूमी रह्या,
करपद कंज सुकोमळ नख जाणे मणि ग्रह्या । ४० ।
अणियाळी आंखडी आंजी बिन्दु दीधो भलो,
कपाळे कौशल्याए करियो कुमकुम चांदलो । ४१ ।
अलवेलो आंगणे रमता रमकडां लेईने,
चपळ गतिए चाले जानु कर देईने । ४२ ।

झगड़ते हैं, कब (कभी) गिर पड़ते हैं, कब (कभी) खीझकर रोते हैं । ३४ । जब वे घुटनों और हाथों के बल चलते (हैं), तो घुँघरू बजते । पाँवों में (बँधे) नूपुर और कमर में (बँधी) किंकिणी बजती । ३५ । घनश्याम श्रीराम ने शरीर में पीला झंगुला पहना । (उसमें) जरी के कलाबत्तू से बनाये हुए बहुत प्रकार के रंगों के बूटे चमकते हैं । ३६ । सोने से मढ़ी हुई टोपी मस्तक पर शोभा देती है । दीपक जड़ा हुआ चौकी नामक एक आभूषण हृदय पर झलकता है । ३७ । कानों में मोतियों के कुण्डल और हाथों में जंजीरें शोभायमान हैं । गहनों के प्रतिबिम्ब एक-दूसरे में मिल गये (हैं) । ३८ । सिंह-नख सोने से मढ़े (हैं); उनकी माला चमकती है । उर रूपी आकाश में रत्नों के रंग ऐसे हैं जो ग्रहों (तारों) की द्युति (कान्ति) को लुप्त (फीकी) कर देते हैं । ३९ । बालचन्द्र के समान शोभायमान मुख पर बाल झूमते रहे । कर और पद रूपी कमल अति कोमल हैं, मानो नखों रूपी मणियों को उन्होंने धारण किया (है) । ४० । कौशल्या ने उनकी कोरदार आँखों में अंजन लगाकर अच्छा-खासा तिलक लगा दिया और भाल पर कुंकुम का गोल टीका कर दिया । ४१ । (वह) अलबेला (बालक) खिलौने लेकर आँगन में खेला करता । घुटनों तथा हाथों के बल पर वह चपल

चालवा शीख्या चारे तोतडुं बोलता,
पुत्रने रमाडवा पूंठे दशरथ डोलता। ४३।
खोळामां लेईने राजा बोलवुं शिखावता,
कर चपटी वजाडी सुतने नचावता। ४४।
दशरथ पुत्रने जोई प्रेम मन आणता,
पोतानुं भाग्य सराहे विधिने वखाणता। ४५।
भूख्या थाय त्यारे रोतां पयपान करावता,
नवां नवां नित्य आभूषण ते अंग धरावता। ४६।
बे वर्षना बाळक थया रमे धणां रंगमां,
बंधु आदे बीजा सखा छे संगमां। ४७।
भोजन समे बोलावे तोये नथी आवता,
नासीने बारणे जाय रडता ने रिसावता। ४८।
कौशल्या पूंठळ धाये पुत्रने बोलावती,
मधुरी मीठी वाणी कहे मन भावती। ४९।
आवो मारा कुंवर काला जाउं तारे वारणे,
घणीवार थई छो भूख्या रमो छो बारणे। ५०।
रुदे चांपी चुंबन कीधुं केडे लई आवतां,
पुत्रने भोजन करावे रूडां मनभावतां। ५१।

गति से चलता है। ४२। (वे) चारों (पुत्र) चलना सीख गये। वे तोतली बोली बोलते। पुत्रों को खेलाने के लिए पीठ पर लेकर दशरथ (खुशी से) डोलते-झूमते। ४३। गोद में लेकर राजा (उन्हें) बोलना सिखाते। हाथों से चुटकी बजाकर पुत्रों को नचाते। ४४। दशरथ पुत्रों को देखकर मन में प्रेम अनुभव करते, अपने भाग्य की सराहना करते और विधाता का बखान करते। ४५। (जब वे बालक) भूखे होते, तब वे रोते। तब वे (दशरथ) उन्हें दूध पिलवाते। उनके शरीर पर नित्य नये-नये आभूषण पहनाया करते। ४६। बालक श्रीराम दो वर्ष के हो गये, (तो) वे मस्ती में बहुत खेलते हैं (थे)। साथ में बन्धु, अन्य सखा आदि होते हैं (थे)। ४७। उन्हें भोजन के समय बुलाते, तब वे न आते, भागकर दरवाज़े में जाते, रोते और रूठते। ४८। कौशल्या पीछे दौड़ती और पुत्र को बुलाती। वह मन को भानेवाली मधुर-मीठी वाणी (में) कहती—मेरे नन्हे बेटे, आओ। मैं तुम पर बलि जाती हूँ। दरवाज़े पर (के बाहर) बहुत समय से भूखे ही खेल

पासे लेई भूपति बेठा विशेके वहालमां,
चारेने भोजन करावे पोताना थाळमां । ५२ ।
एवां सुख जोई राजा ब्रह्मानँद पामता,
मग्न थई लाड लडावे सुखे दिन वामता । ५३ ।
वैकुंठाधीश विश्वंभर ब्रह्म जेने जणिये,
ते प्रभु पुत्र ज थया शुं भाग्य वखाणिये ? ५४ ।
ब्रह्मा शिव शेष ने नारद वखाणे भूपने,
आवे नित्य प्रत्ये जोवा रघुवर रूपने । ५५ ।

वलण (तर्ज़ बदलकर)

रूप जोई रघुवर तणुं, मोह पामे नरनार रे,
पांच वरसना प्रभु थया त्यारे, करता लीला अपार रे । ५६ ।

* * *

रहे हो । ४९-५० । उसे हृदय से लगाकर, गोद में लेकर आते हुए उसने उसका चुम्बन किया । (तदनन्तर) वह पुत्र को सुन्दर मन-पसन्द भोजन कराती । ५१ । (पुत्रों को) विशेष लाड़-प्यार से पास में लेकर राजा बैठ गये । उन चारों को अपनी थाली में भोजन कराते हैं (थे) । ५२ । ऐसा सुख देखकर राजा को ब्रह्मानन्द प्राप्त होता; (उसमें) मग्न होकर वे (पुत्रों को) लाड़ लड़ाते और सुखपूर्वक दिन बिताते । ५३ । जिन्हें (लोग) वैकुण्ठाधीश, विश्वम्भर ब्रह्म (के रूप में) जानते हैं, वे भगवान् (राजा दशरथ के) पुत्र ही हुए । (राजा के इस) भाग्य का क्या बखान करें ? । ५४ । ब्रह्मा, शिव, शेष, और नारद राजा (के भाग्य) का बखान करते हैं । वे रघुवर श्रीराम के रूप को देखने के लिए नित्य प्रति (वहाँ) आते हैं । ५५ ।

रघुवर श्रीराम के रूप को देखकर स्त्री-पुरुष मोहित हो जाते हैं । (जब) प्रभु श्रीराम पाँच वर्ष के हो गये, (तब) अपार लीला किया करते (थे) । ५६ ।

* * *

अध्याय-१९

राग धनाश्री

थया पंच वर्षना चारे कुमारजी, अंगे धरता विविध शणगारजी,
सहुमां मोटा छे श्रीरामजी, निज जन केरा पूरणकाम जी । १ ।

ढाळ

काम-पूरण रामजी, जेनी कथा पुण्य पवित्र,
वस्त्र भूषण अंगे धरीने, करता राम चरित्र । २ ।
कर कनक सायक चाप नानां, ग्रही रमता राम,
असुर करी पाषाणना, शिर छेदता अभिराम । ३ ।
ने दूर बेठा जुए दशरथ, पुत्र मूके बाण,
ते भण्या विना भूले नहि, शिर चोट मारे जाण । ४ ।
त्यारे सभाजन कहे रायने, महा पुत्र बळिया एह,
सिंह तणा होय सिंह निश्चे, तेमां नहि संदेह । ५ ।
वसिष्ठ गुरुने पूछीने, शुभ लग्न मुहूरत दीध,
उपवीत धरवा पुत्रने, दशरथे आदर कीध । ६ ।

अध्याय-१९ (श्रीराम का उपनयन संस्कार तथा विद्याध्ययन)

चारों कुमार पाँच वर्ष के हो गये । वे तरह-तरह के गहने शरीर पर धारण किया करते । अपने पिताजी की कामनाओं को पूर्ण करनेवाले श्रीराम (उन) सबमें बड़े हैं (थे) । १ । जिनकी कथा शुभ फलदायी तथा पवित्र है, वे श्रीराम (सबकी) अभिलाषाओं के पूर्तिकर्ता हैं । वे (बाल श्रीराम) शरीर पर वस्त्र तथा आभूषण धारण करके चरित्र अर्थात् लीलाएँ किया करते । २ । हाथ में सोने के छोटे-छोटे बाण और धनुष लेकर श्रीराम खेला करते । वे मनोहर श्रीराम पत्थरों के राक्षस बनाकर (अर्थात् पत्थरों को राक्षस मानकर) उनके सिर काट डालते । ३ । दूर बैठे हुए दशरथ उन्हें देखा करते हैं कि (उनका) पुत्र बाण चलाता है । देखो, (कैसे) वह बिना सीखे, (विपक्षी के) सिर पर आघात करना नहीं चूकता । ४ । तब सभा में बैठे हुए लोग राजा (दशरथ) से कहते हैं—'वे तो महाबलवान पुत्र हैं । वे निश्चय ही सिंहों में सिंह हो जाएँगे—उसमें कोई सन्देह नहीं है' । ५ । वसिष्ठ गुरु से पूछने पर (उन्होंने) शुभ लग्न (घड़ी वाला) मुहूर्त (खोज) दिया । तब दशरथ ने पुत्र को जनेऊ

अनेक मुनिवर तेडिया, भोजन नाना भात,
सज्जन फरे हलमल करे, आनंदमां दिनरात। ७।
चार सुतने मुंजी बंधन, कराव्युं ऋषिराय,
उपवीत अंगे धराव्यां, ते निगम पथ महिमाय। ८।
वसिष्ठ गुरुए आपियो, जे गायत्रीनो मंत्र,
कुळधर्म क्षत्री तणो जे वळी वेद मारग तंत्र। ९।
वाजित्र वागे अति घणां, ने स्वस्ति मंत्र भणाय,
कीर्ति जाचक वखाणे, घणुं दान आपे राय। १०।
चार दिन भोजन कराव्युं, नगर सहु तेणीवार,
विप्रने बहु दान आपी, वळाव्या निरधार। ११।
जे वेदवंद्य जगतगुरु ते थया छे व्रतबंध,
पछे विद्या भणवा चारे, बेठा गुरु वसिष्ठ संबंध। १२।
जेनी श्वासा निगम कहावे, ते भण्या आगम वेद,
धर्मपाळक प्रभु ते गुरु, सेवता गत भेद। १३।

धरवाने (उपनयन संस्कार करने) का आरम्भ किया। ६। उन्होंने अनेक श्रेष्ठ मुनियों को बुलाया (और) उनको भाँति-भाँति का भोजन कराया। (तब) वे सज्जन दिन-रात आनन्द-पूर्वक घूमते-फिरते और धूम मचाते हैं (थे)। ७। ऋषिराज वसिष्ठ ने (दशरथ के) चारों पुत्रों का मौंजी-बन्धन कराया और उन्हें जनेऊ धरवाया (पहनाया)। वह वेदों का महिमामय मार्ग (रीति) है। ८। वसिष्ठ ऋषि ने उन्हें जो गायत्री मंत्र दिया (पढ़ाया) वह क्षत्रियों का कुल-धर्म था। इसके अतिरिक्त वह वेद-विहित मार्ग तंत्र (पद्धति) है। ९। (तब) अनेकानेक वाद्य बजते हैं (थे) और ऋषिवर 'स्वस्ति' मंत्र पढ़ते हैं (थे)। याचक राजा की कीर्ति का बखान करते हैं (थे) और राजा (उन्हें) बहुत दान देते हैं (राजा ने उन्हें बहुत दान दिया)। १०। उस समय समस्त नगर (-वासियों) को (राजा ने) चार दिन भोजन कराया। निश्चय ही ब्राह्मणों को बहुत दान देकर उनको बिदा किया। ११। व्रतबन्ध समारोह सम्पन्न हो गये; तदनन्तर वे (श्रीराम) जो वेद-वंद्य तथा (वस्तुतः) जगद्गुरु हैं, वसिष्ठ के पास विद्या सीखने के लिए बैठ गये। १२। जिनके श्वास 'वेद' कहाते हैं, उन्होंने आगमों और वेदों की शिक्षा पायी। जो धर्म के पालक प्रभु हैं, ये भेद-भाव का त्याग कर गुरु की सेवा किया करते (थे)। १३। जिनके कटाक्ष से सब लोकपाल काँपते हैं,

निच्चिन नार्यिति यिरवोंन्दगानु । मच्चिक धरियिंचेंममत रेंट्टिप
दन विभु तेजमत्तरि दाल्पलेक । तन मदि भयमंदि तत्तरपडुचु
गंगातरंगमुल् गरमु भीतिल्लि । पोंन्गेल्ल नडगुचु बोंदलुचु
नपुडु१०७०
चित्तसंक्षुभितयै शीघ्रंबुगानु । दत्तीरदेशंबु दा जेर्चुटयुनु
शरवणंबुनयंदु जय्यन जोंच्चि । चिरतरंबुग नंदु जेल्वोंन्दुचुंडे;
नप्पुडु ऋषिपत्नुलंदरु गूडि । योंप्पुगा दमतम युचितकृत्यमुलु
तप्पक तीर्पंग दा मेगुदेन्चि ; । रप्पुडु नार्यलु नागंग जोंच्चि
तोयंबुलाडुचु दोंडरि वेवेग । 'पायक शरवणभव्यस्थलमुन
द्रेताग्नुलनु बोलि तेजरिल्लुचुनु । ब्रातिगा ब्रचुरमै परगुचु लेंस्स
नुन्नवि यीयग्नु लोंन्डोरुल् मनमु । चेंन्नार जलिचेत जिक्कि
स्रुक्कितिमि ।
मन्ननर्लिपोंन्द मनमु निच्चटनु । ग्रन्नन चेकोंन गडगुद' मनिन
नीश्वरतेजंबु निरवोंद बुच्चि । शाश्वतंबुग धर सत्कीर्ति वेंलय
जातवेदुनि जेर जनिन यिंतुलकु ।नाततंबुग जूचिनट्टि यिंतुलकु१०८०
निर्भर वृत्तिमै निलिचें गर्भमुलु । गर्भिणुलै वारु करमोंप्पुचुन्न

(किन्तु) अपने विभु (स्वामी) के तेज को उस समय धारण न कर सकने पर, (वह) अपने मन में भीत होकर, घबरा गई । गंगा की तरंगें अत्यन्त भयभीत हो गईं, (उनका) उफान कम हो रहा । ॥ १०७० ॥

—चित में संक्षुभित होकर उसने शीघ्रता से उसे तीर-प्रदेश पर पहुँचा दिया (छोड़ दिया) । वह (तेज) झट से शरवण (सरकंडों के वन) में प्रवेश कर चिरकाल तक शोभायमान रहा । तब (एक दिन) ऋषिपत्नियाँ सब मिलकर, सुन्दरता से अपने-अपने उचित कार्यों को अवश्य निर्वाह करने के लिए स्वयं वहाँ (उस तीर-स्थल पर) आईं । तब वे नारियाँ उस गंगा में प्रवेश कर, स्नान करती हुईं, आसक्त हो शीघ्रता से बोली—'शरवण के भव्य-स्थल में त्रेताग्नियों के समान प्रज्वलित होती हुई, अविरल (एवं) प्रचुरता से विराजमान होती हुई ये अग्नियाँ बहुत श्रेष्ठ (लग रही) हैं । हम लोग अधिक ठंड से ठिठुर रही हैं । वहाँ जाकर, शीघ्र ही सुख प्राप्त करेंगी ।' (ऐसा) कहकर, धरती पर शाश्वत रूप से सत्कीर्ति से विराजमान होकर, इस रूप में ईश्वर-तेज को स्थिरता से प्राप्त करने, जातवेद (अग्नि) के पास गईं । उन स्त्रियों को, आतत रूप से (उस तेज को) देखने वाली उन स्त्रियों को, ॥ १०८० ॥

बहुभीतुलगुचु ना भामिनुलपुडु । तहतहपडि मरि तन्मयत्वमुन
दमतम यिड्लकु दारथि नरुग । शमितात्मुलगु मुनिसंघंबु लप्पु
डंत ना वृत्तान्त मायोगदृष्टि । र्जितिचि मुनुलल चेलुवलकनिरिः
'मी सत्यशीलत मीदु गर्वंबु । मी सौख्यमिप्पुडु मिम्मित चेसें',
ननुचु नाग्रहमुन नवनि गंपिंप । वनितल मीद नवार्य कोपमुन
'मति हीनुलरु मिम्मु मन्निपनेल? । पतिदूरलगु' डंचु बल्किन विनुचु
मगुड जाह्नवि जेरि मगुवलंदरुनु ।दगुनम्म! नीकिदि तगुनंचु बलिकि
तमतम बाहुल ताडनंबुलुनु । दम गर्भमुल मीद दग जेसि
रोंगिनि ।

गरताडनंबुल गलगि कंपिंचि । करमोप्प गर्भमुल् गरगि विच्छिन्न
१०९०

गर्भंबुलै यप्डु कांतलवलन । निर्भयंबुन जारि नेरयंग नप्पु
डारुखंडंबुलै यवनिपै बडियें । जारिन या खंड चयमु ग्रहिंचि
शरवणंबुनयंदु जप्यन बेंट्टि । यरुदलरग लेचि या तलोदरुलु

—निर्भर वृत्ति से (अतिशयता से) गर्भ ठहर गए (वे गर्भवतियाँ हुईं)। गर्भिणी होकर वे अति ही शोभायमान हुईं। वे भामिनियाँ (स्त्रियाँ) तब बहुत ही भीत होती हुईं, घबराती हुईं, फिर तन्मयता से, इच्छा से अपने-अपने घर पहुँचीं। शमित आत्मा वाले (शान्त चित्त वाले) मुनियों ने तब उस समस्त वृत्तान्त को योगदृष्टि से जानकर, उन स्त्रियों से कहा—'तुम्हारी सत्यशीलता, तुम्हारे गर्व, तुम्हारे सुख (की इच्छा) ने तुम्हें ऐसा (दोषी) कर दिया है।' (ऐसा) कहते हुए, क्रोध के कारण अवनि (धरती) काँप उठे, ऐसा (उन) वनिताओं (स्त्रियों) पर अवार्य (दुर्निवार वचन) क्रोध से कह दिया—तुम 'मतिहीनाओं को क्षमा क्यों करें ? (तुम लोग) पतियों से दूर हो जाओ।' ऐसा कहने पर, सुनकर फिर से जाह्नवी के पास पहुँचकर, (उन) सभी स्त्रियों ने कहा—'हे (गंगा) माई ! क्या यही तुम्हें करना चाहिए था ? यह उचित है ?' (ऐसा) कहकर, अपने गर्भों पर अपने-अपने बाहुओं से, क्रम से, ताड़न करने लगीं। कर-ताड़न से विचलित-कम्पित हो, अधिक शोभायमान वे गर्भ पिघलकर, विच्छिन्न होकर, ।। १०९० ।।

—निर्भयता से लुढ़ककर, छः खण्ड होकर, अवनि पर गिर गए। लुढ़के हुए उन खण्डों को उठा कर, तुरन्त उन्हें शरवण में रखकर, आश्चर्य से वे तलोदरियाँ (स्त्रियाँ) बड़ी प्रीति से तपस्या करने चली गईं। वह अति उग्र तेज एक जगह एकत्र होकर अत्यधिक बढ़ा और वही इस अवनि

तपमुन करिगिरि तद्द्यु ब्रीति । नुपमिप नट जाल नुग्रवीर्यंबु
कवगूडि वृद्धियुं गड्डगलग जाल । नवनिपै श्वेताद्रि यन गडु नॊप्पॆ;
नरय ना शैलंबुनंदु गुमारु । डरुदार जन्मिचॆ हरुनि तेजमुन ;
जननप्रदेशंबु शरवणंबगुट । जननाथ! यतडॊप्पॆ शरजन्मुडनग;
निल गृत्तिकलु सन्नुलिच्चुट जेसि । यलरुचु गार्तिकेयाख्य जॆन्नॊन्दॆ ;
नारय नम्मातलार्वुरुगान । वारु संतोषिप वदनंबुलारु
धरियिंचि समुचित स्तन्यपानंबु । सरिनॊप्प जेयुट षण्मुखुंडय्यॆ;
११००
दरुणेंदुमौळिरेतस्स्कंदमुननु । नरुदारगा स्कंदुडन नॊप्पॆ; नंत
बरुवडि दमु सुरल् प्रणुतिंप नेरिगि । गिरिपुत्रि कन्नुलु गॆम्पार जूचि,
'सुरलार! संतानशून्यत मीकु । निरवन्द धरणिकि नॆल्लकालंबु
बहुनायकत्वंबु बाटिल्लनिम्मु । बहुविधंबुल' ननि पलिकॆ गोपिंचि;
कलगिरि सुर; लंत गौरितो दपमु । सलुप हिमाद्रिकि जनियॆ नीश्वरुडु ।
नमरेंद्रुडादिगा नखिलदेवतलु । गमलसंभवुडुन्नकडकु दामेगि,
'जलजसंभव ! भुजासत्त्वसंपन्नु । नॆलमि सेनापति निम्मु मा' कनिन,

---

पर श्वेताद्रि कहलाया। उस शैल पर शिव के तेज से, आश्चर्य रूप से कुमार (स्वामी) का जन्म हुआ। हे जननाथ! जन्मस्थान शरवण था, अतः वह शरजन्मा (शरवण-भव) कहलाए। पृथ्वी पर कृत्तिकाओं के स्तन्य-पान कराने से वह कार्तिकेय के नाम से विख्यात हुए। विचार करने पर (जानिए कि) वे (कृत्तिकाएँ) माताएँ छः थीं। उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए छः वदन धारण कर समुचित रूप से, शोभायुक्त रूप से, स्तन्यपान करने से वे षण्मुख (छः मुखवाले) हुए। ॥ ११०० ॥

—तरुण-इन्दु-मौलि (शिव) के रेत-स्कन्दन (पतन) के कारण, वे स्कन्द कहलाए। तब क्रम से देवताओं को अपनी-स्तुति करते जानकर, गिरिपुत्री (पार्वती) ने आँखें लाल करके (क्रुद्ध होकर) कहा—'हे देवताओ! तुम लोगों को सन्तानहीनता और इस धरणी को सदा अनेक प्रकार से बहुनायकत्व प्राप्त होगा।' ऐसा क्रुद्ध होकर वे बोलीं। (तब) देवता क्षुब्ध हुए। उसके पश्चात् गौरी के साथ तपस्या करने ईश्वर (शिव) हिमाद्रि को चले गए। अमरेन्द्र आदि अखिल देवता, कमल संभव (ब्रह्मा) के यहाँ गए (और) (कहा)—'हे जलजसंभव! शोभा से भुजासत्त्वसम्पन्न (इस) सेनापति को हमें दे दो।' (ऐसा) कहने पर वारिजर्भ ने उन्हें देखकर (कहा)—'गौरी और ईश (शिव) का पुत्र कार्तिकेय, तुम्हारे लिए

वारिजगर्भुंडु बारि वीक्षिंचि । 'गौरीशु सुतुडैन कार्तिकेयुंडु
सेनाधिपत्यंबु सेयु मी' कनिन । ना निलिंपुलु वेड्क 'नौगाक' यनुचु
जेकोंन नातडु सेनानियय्ये । नाकनायकुनकुन्नत सौख्य मोसग'
१११०

ननिपल्क रघुरामु डधिक संतोष । मुनु बोंदि मर्रियु नम्मुनिनाथु जूचि
'यी महानदि संयमीश्वर ! त्रिपथ । गामिनि यगुटेमिकारणं' बनिन
ननघुंडु कौशिकु डारामु जूचि । विनुमनि या कथ विवरिंपदोंडगे;
१११३

गंगानदि वृत्तांतमु

'ननघुडयोध्यकु नधिपुडु सगरु । डनु चक्रवर्ति युद्धतकीर्ति गलडु ।
अतडु संततिलेमि कनिशंबु वगचि । मतिलोन दलपोसि मंत्रुल नुनिचि
हिमवंतमुन केगि यितुलु दानु । दमकिंचि भृगुगूंचि तपमाचरिंप
नंत ना भृगुडुनु ना तपंबुनकु । संतुष्ट हृदयुडै सगरुनीक्षिंचि,
'पृथिवीश ! कोडुकुलु पेक्कंड्रु नीकु । ब्रथितोरुकीर्तुलु परग बुट्टेदरु;

सेनापतित्व करेगा ।' (ऐसा) कहने पर वे निलिंप (देवता) हर्षामोद से 'ऐसा ही हो' बोले । उनके ग्रहण करने पर नाक-नायक (स्वर्गपति इन्द्र) को उन्नतसुख सम्पन्न कराते हुए वह (कार्तिकेय) सेनानी हुए ।' ॥ १११० ॥

—ऐसा (विश्वामित्र के) कहने पर रघुराम अधिक प्रसन्न हुए और उस मुनिनाथ को देखकर बोले—'हे संयमीश्वर ! इस महानदी के त्रिपथ-गामिनी होने का क्या कारण है ?' (ऐसा) कहने पर निष्पाप कौशिक राम को देखकर बोले, 'सुनो' और उस कथा का विवरण देने लगेः— ॥ १११३ ॥

गंगानदी का वृत्तान्त

—'अनघ (पुण्यवान्) सगर नामक चक्रवर्ती अयोध्या के अधिप (राजा) उद्धत कीर्ति वाले थे । वे सन्तान के अभाव से व्याकुल हो, (अपने) चित्त में विचारकर, मन्त्रियों को राज्य का भार सौंप कर, स्त्रियों के साथ हिमायल पर्वत पर गए । (वहाँ) बड़ी तन्मयता से भृगु के आश्रम में तपस्या की । तब उस तपस्या से सन्तुष्ट होकर भृगु ने सगर से कहा 'हे पृथ्वीश ! तुम्हें प्रख्यात कीर्ति वाले कई पुत्र प्राप्त होंगे । सम्मान्य

अंचित कीर्ति नी यतिवलंदोकतें । गांचु नोक्कनि वंशकरुडैन पुत्रु;
मरि योक्क सतिगांचु मानुगा सुतुल। नरुवदिवेवुर नमित विक्रमुल'
११२०
ननि वरंबिच्चिन ना राजसतुलु । विनि करंबुलु मोड्चि विनयंबुतोड
मुनिनाथुनकु म्रोक्कि मुदमंद'नोक्क। तनयुडेसति? कुन्न तनयुलेसतिकि?'
ननवुडु 'मी कोरिनट्लये पुत्र । जननंबु' लनि पल्क संतोषमंदि,
यंदग्रमहिषि निजान्वयकरुनि । नंदनु नोक्कनि नरनाथ ! कोरें।
मरि कोरें ना युन्न मगुवयु सुतुल । नरुवदि वेवुर नधिकमोदमुन ।
सगरुंडु भृगुनकु सतुलतोड गूड । नोगि ब्रदक्षिणमंत नोनरिंचि म्रोक्कि
पुरमुन केतेंन्चि पोलुपार नंत । गरमु वेडुक गोन्तकालंबु सनग
मानुगा दन यग्रमहिषि केशिनियु । सूनुनि नसमंजसुंडनुवानि
गनियें ; ना सुमतियन् कांतकु बुट्टॆ। घनतरंबैनट्टि गर्भतुंबंबु ।
करकैन या सोरकायलो बुट्टि । ररुवदि वेवुरत्यद्भुत लील ११३०
नंत दादुलु वारि नाज्य भांडमुल ।गोन्तकालमु वेम्प गोमरारि वारु

कीर्ति वाली इन स्त्रियों में से एक (स्त्री) वंशकर (वंशोद्धारक) पुत्र को जन्म देगी । दूसरी स्त्री अमित विक्रम वाले साठ हज़ार पुत्रों को जन्म देगी ।। ११२० ।।

—ऐसा वर देने पर, उन रानियों ने हाथ जोड़, विनय के साथ, मुनिनाथ को प्रणाम कर, प्रसन्न हो पूछा—'हम दोनों में किसके एक पुत्र होगा और किसके साठ हज़ार पुत्र उत्पन्न होंगे ?' ऐसा पूछने पर मुनि ने कहा—'तुम लोगों की इच्छा के अनुसार पुत्र जन्म (पुत्रोत्पत्ति) होगा ।' ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर, उनमें से अग्रमहिषी (पटरानी) ने निजान्वयकर (अपने वंश के उद्धारक) एक नन्दन (पुत्र) की इच्छा प्रकट की तथा दूसरी स्त्री ने अधिक मोद के साथ, साठ हज़ार पुत्रों की इच्छा प्रकट की । सगर, रानियों के साथ, क्रम से भृगु को प्रदक्षिणा कर, पुर में शोभा के साथ आए । इस प्रकार कुछ समय अत्यन्त आनन्द के साथ बीता । कुछ समय बाद राजा सगर की अग्रमहिषी (पटरानी) केशिनी ने असमंजस नामक पुत्र को जन्म दिया । और उस सुमती नामक रानी से एक गर्भतुम्ब (लौकी) पैदा हुआ । उस कठिन लौकी में से, अतिअद्भुतलीला से साठ हज़ार (पुत्र) पैदा हुए । ।। ११३० ।।

—तब धाइयों ने उन्हें कुछ समय तक आज्यभांडों (घी के पात्रों) में रख

रूपयौवनमुल रूढ़िमै बॆरिगि ; । रा पॆद्दवाडंदुदग्रदर्पमुन
वापोव दम्मुल वडि बट्टि पट्टि । चापलंबुन गट्टि सरयुवुलोन
वैचुचु नव्वुचु वच्चिन मगुड । द्रोचुचु नुंडु; ना दुष्टात्मुडैन
यसमंजसुन कंत नंशुमंतुंडु । दॆसल देजंबुलु दीपिंप बुट्टॆ ।
नायसमंजसु डतिदुष्टचित्तु । डैयुन्न नतनि बोनडचि या राजु
शाश्वतधर्मनिष्ठापरुं डगुचु । नश्वमेधमु सेय ननुरक्ति दॊडगॆ"
ननिन गौशिकु जूचि या रामुडनियॆ । 'मुनिनाथ! मा वंशमुन वारि कथलु
विन वेड्क पुट्टॆडु ; विवरिंपु माकु' । ननिन विश्वामित्रुडनियॆ रामुनकु

सगरुल वृत्तान्तमु

'विडुवक हिमशैल विन्ध्यशैलमुल । नडुम ना सगरु जन्नंबु वर्तिंप ११४०
यागंबु चेरुव नंशुमंतुंडु । रागिल्लि यश्वंबु रक्षिचुनॆडनु,
ननिमिषपति दैत्युडै म्रुच्चिलिंचि । कॊनिपोयि पाताळकुहरंबु सॊच्चि

कर पाला-पोसा । वे सभी पुत्र मनोज्ञ रूप से, रूप और यौवन को अत्यधिक रूप से प्राप्त कर बड़े हुए । उनमें से असमंजस नामक वह ज्येष्ठ पुत्र उदग्र दर्प से अपने छोटे भाइयों को झट से पकड़-पकड़ उन्हें रुलाते हुए, चपलता से उन्हें रस्सियों से बाँध, सरयू में डाल देता और हँसता । वे (नदी में से) लौट आते तो फिर ढकेलता रहता । उस दुष्टात्मा असमंजस के अंशुमान् (नामक पुत्र) दिशाओं को दीप्त करता हुआ पैदा हुआ । उस असमंजस के अतिदुष्ट होने के कारण राजा सगर ने उसे निर्वासित कर दिया और शाश्वत धर्म-निष्ठा में तत्पर हो प्रेम-पूर्वक अश्वमेध (यज्ञ) करने का प्रयत्न करने लगा ।' यह सुनकर कौशिक की ओर देखकर राम ने कहा—'हे मुनिनाथ ! मुझे अपने वंश के लोगों (पूर्वजों) की कथाएँ सुनने की इच्छा हो रही है । अतः आप (उन्हें) विवरण (विस्तार) से कहिए ।' ऐसा कहने पर विश्वामित्र राम से यों बोलेः—

सगरों का वृत्तान्त

—(राजा सगर) हिमशैल और विन्ध्यशैल के मध्य (मध्यभूमि में, आर्यावर्त में) निरन्तरता से यज्ञ करने लगा । ॥ ११४० ॥

—यज्ञ स्थल के निकट ही अंशुमान् प्रेमपूर्वक (यज्ञ के) अश्व की रखवाली कर रहा था । उस समय देवराज इन्द्र ने दैत्य (राक्षस) का रूप बना कर (अश्व को) चुरा लिया और पातालकुहर में प्रवेश कर, कपिल मुनि

कपिलसंयमि वेन्क गडकतो गट्टि । यपरिमितानंदुडै येगें दिविकि ।
भूपालु डश्वंबु बॊडगान किच्च । गोपिंचि मंडुचु गॊडुकुल बिलिचि
'यिट गान मश्वंबु; नॆव्वडो वच्चि । कुटिलुडै म्रुच्चिलि कॊनिपोयिनाडु
मूडु लोकंबुलु मुनुमिड वेंदकि । वाडॆव्वडैननु वानि निर्जिंचि
तॆन्डु गुर्रमु वेग तॆगुवमै मीरुः । पॊन्ड'न्न सगरुलु भुजशक्ति मॆरसि
नॆऱसि ब्रह्मांडंबु निंड गर्जिंचि । यरुवदि वेवुरु ना प्रॊद्दे कदलि
या नाकलोकंबु नवनियु वेंदकि । कानक धरणि व्रक्कलु सेयगडगि,
'यॊक्कॊक्क डॊक्कॊक्क योजनं बुर्वि। नक्कजंबुग द्रव्वु' डनि येर्पऱिंचि
'परुवडि पूर्वदिग्भागंबु दॊडरि । धर ब्रदक्षिणमुगा द्रव्वुद' मनुचु
बॊरि बॊरि गुद्दाल भूरिशूलमुल । धर रसातलमुनंदाक द्रव्वुचुनु
बाताळवासुल ब्रकटसत्त्वमुल । भूतसंततुल जंपुचु जॆलंगुचुनु
वॆस नप्पुडरुवदि वेल योजनमु । लसमुन द्रव्वि रा यसमानबलुलु ।
भूरिसत्त्वमुन जंबूद्वीपमिट्लु । वारिक तिरिगि रा वडि द्रव्वुटॆऱिगि,
यमरगंधर्वसिद्धादुलु बॆदरि । कमलगर्भु'डुन्नकड केगि म्रॊक्कि,

के पीछे, सप्रयत्न (उस अश्व को) बाँधकर, अपरिमित आनन्द से दिवि (स्वर्ग) को लौट गए। भूपाल ने अश्व का पता न लगने पर, अतिक्रुद्ध होकर, जलते (क्रुद्ध होते) हुए, पुत्रों को बुलाकर कहा—'यहाँ अश्व का पता नहीं है। कोई कुटिलात्मा आकर उसे चुरा ले गया है। तीनों लोकों में क्रमशः ढूँढकर, जिस किसी ने घोड़े को चुराया हो, उसका वध करके, शीघ्र अश्व ले आओ। साहस के साथ तुम लोग जाओ।' ऐसा कहने पर अतिशय भुज-बल का प्रदर्शन करते हुए, ब्रह्माण्ड काँप उठे, ऐसा गरज कर, उसी समय सगर के साठ हज़ार पुत्र निकल पड़े। नाकलोक (स्वर्ग) (और) अवनि (धरती) पर ढूँढने पर भी जब अश्व न दिखाई पड़ा तो वे धरणी के टुकड़े-टुकड़े करने लगे। 'हममें से प्रत्येक एक-एक योजन भर उर्वी (धरती) को, चकित करने वाले ढंग से, खोद डालें', ऐसी योजना (सगर के पुत्रों ने) बनाई।॥ ११५० ॥

—'क्रम से पूर्व दिग्भाग से प्रारम्भ करके, धरा को प्रदक्षिणा रूप से खोदेंगे' ऐसा कहते हुए, गुद्दाल (कुदाल) तथा बड़े बड़े शूलों से धरा को, बार-बार रसातल तक खोदते हुए, प्रकट पराक्रम वाले पाताल-वासियों (और) भूत-संततियों (प्राणी-समूह) को मारते हुए, उत्साहपूर्वक, उन असमान बलशालियों ने शीघ्रता से साठ हज़ार योजन भूमि को दर्प के साथ खोद डाला। भूरि सत्त्व (अधिक शक्ति) के साथ जम्बूद्वीप को (सगरपुत्रों द्वारा) पुनः पुनः दुर्निवार रूप से तथा शीघ्रता से खोदते

'वनपर्वत द्वीपवतियैन भूमि । चनि त्रव्वुचुन्नारु सगरनंदनुलु;
बलुवडि सत्त्वसंपन्नंबुलैन । जलचरंबुल बट्टि चंपुचु, मरियु
'वीडु यज्ञमुनकु विघ्नंबु जेसें' । 'वीडश्वहरु' डंचु वीडु वाडनक
बलियुलै तम दृष्टि बडुवारि नेल्ल । जलजसंभव ! पट्टि चंपुचुन्नारु ११६०
तलचि नीविदि समाधानंबु सेय । वलयु'नन्ननु ब्रह्म वारितो ननियें;
'गपिलमुनींद्रुडै कैकोन्नवाडु । तपमु नव्ययुडैन दामोदरुंडु ।
अम्मुनि कोपाग्नि यंदंद वारि । ग्रम्मिन भस्मंबुगा गलवार
लनि पल्क सुरलेल्ल 'नौगाक' यनुचु। जनि ; रंत नक्कड सगर नंदनुलु
पिडुगुल बोलेंडि भीकरध्वनुलु । कॆडम्रोय निल ब्रदक्षिणमुगा गलय
जुट्टुनु द्रव्वि यॆच्चोट घोटकमु । पट्टु गानक तंड्रिपालि केतेंन्चि,
'यश्वंबु बॊडगान मखिलंबु वॆदकि;। यश्वचोरुनि गानमैति मॆक्कडनु;
नेमेमि सेयुदु मिट मीद' ननिन । भूमीशुडलगि या पुत्रुल कनियें;
'विश्वंबु गलयंग वॆदकि ना यॆदुटि । कश्वंबुदेक मीररुदेर वलव'

देख कर, अमर, गन्धर्व, सिद्ध आदि घबरा उठे और जहाँ कमलगर्भ (ब्रह्मा) थे, वहाँ जाकर, प्रणाम कर बोले—'वन, पर्वत तथा द्वीपों से युक्त भूमि को सगरनन्दन सप्रयत्न खोद रहे हैं। इच्छानुसार पराक्रम-सम्पन्न जलचरों को पकड़-पकड़ कर मारे डाल रहे हैं। 'इसने यज्ञ में विघ्न पहुँचाया है', 'यह अश्वहर (अश्व का चोर) है' ऐसा कहते हुए, अपनी दृष्टि में आने वाले सभी को सगर के बली पुत्र पकड़-पकड़ कर मारे डाल रहे हैं। ॥ ११६० ॥

—इस पर विचार करके तुम्हें इसका समाधान करना चाहिए।' ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने उनसे कहा—'अव्यय दामोदर (विष्णु) कपिल मुनीन्द्र के रूप में पाताल में तपस्या कर रहे हैं। उनकी कोपाग्नि के उन पर छा जाने से वे भस्म हो जाने वाले हैं।' ऐसा कहने पर सभी देवता 'तथास्तु' कह-कर चले गए। तब वहाँ सगर-नन्दनों ने वज्र के समान भयंकर ध्वनियों के साथ धरती को प्रदक्षणा-पूर्वक, पूरी तरह से, चौतरफ़ खोद डाला, किन्तु कहीं भी घोड़े के न मिलने पर, पिता के पास आकर, बोले—'अखिल (लोक) को खोजने पर भी हम लोग अश्व का पता न लगा सके, कहीं भी अश्वचोर को देख नहीं सके। इसके बाद हम अब क्या करें।' ऐसा कहने पर राजा सगर क्रुद्ध हो उन पुत्रों से बोले—'(समस्त) विश्व में पूरी तरह से खोजो, बिना अश्व के तुम लोगों को मेरे समक्ष नहीं आना चाहिए।'

सभखे मन मारे, मोग़ो कयो मुकुनि साँ।
सुद्रिकनि स्याणा सूर्मा, ब्रांभणु ब्रलु हारे।
कँहि निरविकल्प नेहींअ छद्रियो, तूहनि जाँ तारे।
द्रिठो जँहि ब्रारे, द्रीओ पँहिंजे द्रील में ॥ २७८ ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि मन ने सब को घूँसों से मार कर, मन्द बना दिया है। बुद्धिमान तथा शूरवीर भी मन के सामने बल हारकर रो रहे हैं; मन पर उनका कोई वश नहीं चलता है। पर जिस निर्विकल्प प्रेमी ने शरीर में ही (ज्ञान का) दीपक जला कर देखा है, उसने माया को अनाज के छिलकों (Husk) की तरह आसानी से बाहर निकाल दिया है। (जिस प्रकार छिलके वाले अनाज को पानी में डालने से छिलके पानी के ऊपर-ऊपर तैरते है और फिर उन्हें आसानी से निकाला जा सकता है, उसी प्रकार प्रेमियों ने आत्मज्ञान द्वारा माया को सरलता से अलग कर दिया है) ॥ २७८ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई ग़र्टु ग़िचीअ में।
जीएं दसे ब्रकिरीअ खे, कासाईअ कुठो।
सामी बचियो को सूर्मो, जँहि ते सन्तु तुठो।
उठे बुहि चुठो, करे मिल्यो महबूब साँ ॥ २७९ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार कसाई बकरी को फँसा कर मार देता है उसी प्रकार (निर्दयी) मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है। पर जिस शूरवीर (ज्ञानी) पर सन्त प्रसन्न हुआ है (जिस पर सन्तों की कृपा है), वह सांसारिक अग्नि से शुद्ध होकर महबूब (परमात्मा) से जा मिला है ॥ २७९ ॥

सभ खे मन मुठो, द्रेई ग़र्टु ग़िचीअ में।
सूधी राह छद्रे करे, पाइनि पेरु पुठो।
सामी मन मवास खे, कँहिं कामिल कुठो।
उठो बुहि चुठो, कयो जँहि कारी कढी ॥ २८० ॥

मन ने सब के गले में (माया की) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है। वे सीधा मार्ग छोड़कर, उल्टे रास्ते पर पैर रख रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जिस उत्तम पुरुष ने कालिमा (इच्छा, वासना आदि) निकाल कर अपने अहंकारी मन को मार दिया है (वश में कर लिया है), वही सांसारिक अग्नि से शुद्ध हुआ है ॥ २८० ॥

सभखे मुठो मन, ड्रेई ग़र्टु ग़िचीअ में।
नाना भांइ भर्म जा, भुली पाइनि तन।
सामी बचियो को सूर्मो, जाग़ी बिना जतन।
ब्रुधा जँहिं वचन, ऐनु अभेदु अन्भई॥ २८१॥

मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर, उन्हें मार दिया है (नष्ट कर दिया है), अतः वे भ्रम में भूले हुए लोगों की तरह नाना प्रकार के शरीर धारण कर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर ने शुद्ध एवं अभेद आत्मज्ञान के वचन (उपदेश) सुने हैं, वह बिना यत्न के जागृत होकर (मन के संकल्प-विकल्प से) बच गया है॥ २८१॥

सभ खे मुठो मन, विझी ग़र्टु ग़िचीअ में।
पर्छिन ज्ञाणी पाणखे, कूड़ा कनि जतन।
ईएं चवनि था अन्भई, सामी साधू जन।
कोट अख्यूं ऐं कन, लिंव लिंव जिनिखे लख्यजी॥ २८२॥

सामीजी कहते हैं कि अन्तर्मुख साधु जिन्हें कोटिनेत्र एवं कान प्राप्त हैं, तथा जिनके रोम-रोम में परमात्मा (बस रहा) है, वे कहते हैं कि मन ने सब के गले में (माया रूपी) फाँसी डालकर उन्हें मार दिया है, अतः वे अपने को नाशवान् मानकर झूठे यत्न करते हैं॥ २८२॥

सभखे रोआरे, मोहे माया मोहिणी।
भंवाए भव सिन्धु में नाना रूप धारे।
सामी बचियो को सूर्मो, सतिगुर सम्भारे।
बेहद द्रियो ब्रारे, पूरणु ड्रिठो जँहिं पाण खे॥ २८३॥

मोहिनी माया सब को आकर्षित कर रुलाती रहती है। वह नाना प्रकार के रूप धारण कर उन्हें संसार रूपी सागर में भटकाती रहती है। सामीजी कहते हैं कि जिस शूरवीर (ज्ञानी) को सद्गुरु ने याद किया है (कृपा की है), वही (माया से) बच गया है, तथा उसने अनन्त (ज्ञान रूपी) दीपक जलाकर पूर्ण परमात्मा को देख लिया है॥ २८३॥

सभेई थी आतुरु, पिटिनि कारणि पेटजे।
पाए भवनि पाणही भर्म खे भाकुरु।
सामी सुजाग़नि ड्रिठो, हरि हाज़ुरु नाज़ुरु।
करे मनु अफुरु, माणिनि मौज मुक्ति जी॥ २८४॥

सब पेट के कारण दुखी होकर (अपने को) पीट रहे हैं तथा भ्रम को स्वयं ही गले से लगाकर भटक रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि जागृत लोगों ने मन को स्थिर कर, परमात्मा को सब स्थानों पर व्याप्त देखा है, अतः वे मुक्ति का (आत्मा की मुक्तावस्था का) आनंद लूट रहे हैं ॥ २८४ ॥

सामी विश्व सारी, माया मोहे वसि कई ।
कँहिंखे छद्रे कीन की, द्रेई द्रेखारी ।
को नेहीं व्युसि निकिरी, भाग्यवानु भारी ।
जँहिखे पीआरी, सतिगुरु सुर्की सार जी ॥ २८५ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सारे विश्व को झूठे ठाठों द्वारा आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है, वह (झूठे) ठाठ दिखाकर किसी को भी नहीं छोड़ती है। (सब को वश में करती है)। कोई महान् भाग्यशाली प्रेमी जिसे सद्गुरु ने ज्ञान का घूँट पिलाया है, वही इस (माया) से मुक्त हो पाया है ॥ २८५ ॥

सामी सभेई, भुला जीअ भर्म में ।
वठनि कचु ख़शीअ साँ, था आत्म धनु द्रेई ।
द्रीओ ब्रारे घर में, दिसनि कीन पेही ।
व्रिला जन केई, सुर्झा रहनि स्वभाव में ॥ २८६ ॥

सामीजी कहते हैं कि सब जीव भ्रम में (अपने स्वरूप को) भूल गये हैं अतः वे आत्मारूपी धन देकर खुशी से (विषय-वासनाओं रूपी) कीचड़ को ले रहे हैं। वे अपने (हृदय रूपी) घर में (ज्ञान का) दीपक जलाकर, भीतर पैठकर (झाँक कर) नहीं देखते, केवल कुछ विरले-लोग ही अपने भावों में सचेत रहते हैं ॥ २८६ ॥

हर हर कनि हर्कत, माया ख़ाब ख़्याल साँ ।
जँहिं में मुठा केतिरा, मूर्ख करे ममत्व ।
ज्रमनि मरनि मति रे, भंवनि बिना कँहि मत ।
सामी सहनि दिकत, जागी द्रिसनि न जीअ में ॥ २८७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया के झूठे ख्यालों में फँसकर लोग बार-बार (बुरा व्यवहार करते हैं)। कितने ही मूर्ख उस (व्यवहार) से ममता कर अपने को नष्ट करते रहते हैं। वे बुद्धिहीन होकर जन्मते तथा मरते रहते हैं और सिद्धान्त-हीन होकर भटकते रहते हैं। वे कष्ट सहन

करते हैं पर जागृत होकर हृदय में (स्थित परमात्मा को) नहीं देखते ॥ २८७ ॥

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
ख़ावन्दु पँहिंजे ख़्याल में, पियो फाहीअ रे फासी।
भवे नितु भुलनि ज्याँ, गंगा गया कासी।
खुदि रे खलासी, ब्रियो करे सघे कोन को ॥ २८८ ॥

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस बात पर हँसी आ रही है तथा आश्चर्य भी हो रहा है कि जीव (जो स्वयं परमात्मा का अंश है अर्थात् जो ख़ुद परमात्मा है), अपने ही विचारों में बिना फन्दे की फाँसी में फँस गया है। (माया परमात्मा द्वारा बनाई गई है, जीव परमात्मा का अंश है, पर अपनी ही बनाई माया में वह अपने सच्चे स्वरूप को भूल जाता है और माया को सत्य मान कर उसी में ही फँसा रहता है।) अतः वह भूले हुए की तरह गंगा, गया एवं काशी में (परमात्मा को पाने के लिए) भटकता रहता है, वह यह नहीं जान पाता कि उसके सिवा दूसरा कोई उसके (माया रूपी) बन्धन को नहीं काट सकता है। (माया के बन्धनों से मनुष्य स्वयं ही जागृत होकर अपने को बचा सकता है, दूसरे किसी की सहायता से ये बन्धन नहीं कट सकते।) ॥ २८८ ॥

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
ख़ावन्दु पँहिंजे ख़्याल में, पियो फाही अरे फासी।
भवें नितु भुलनि ज्याँ, गंगा गया कासी।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी ॥ २८९ ॥

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण बात पर हँसी आ रही है एवं विस्मय भी हो रहा है कि जीव (जो परत्मामा का अंश होने के कारण ख़ुद परमात्मा ही है वह) अपने ही विचारों में (माया की) बिना फन्दे वाली फाँसी में फँस गया है, अतः भूले हुए की तरह (अपने परमात्मा को पाने के लिए) गंगा, गया तथा काशी में भटकता रहता है। भला परमात्मा के बन्धनों को उसके सिवा दूसरा कौन नष्ट कर सकता है? (परमात्मा का अंश जीव ही माया के इन बन्धनों को स्वयं काट सकता है, दूसरा कोई भी इसे काटने में असमर्थ है) ॥ २८९ ॥

हैरत एं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
मञे वेठो पाण खे, अविनासी नासी।
सदा भवे सामी चए, चित में चोरासी।
खुदि रे खलासी, केरु करे कर्तार जी।। २९० ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस बात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी (आत्मा) अपने को नश्वर मान बैठा हैं। (आत्मा परमात्मा का अंश होने के कारण शाश्वत है परन्तु जीव जिसमें आत्मा का निवास है, वह अपने को आत्मा न मान-कर नश्वर शरीर ही मान बैठा है)। अतः वह चित्त द्वारा सदैव चौरासी (लाख योनियों) में भटकता रहता है, पर परमात्मा के बनाये हुए माया के बन्धनों को स्वयं उसके सिवा कौन नष्ट कर सकता है ? कोई नहीं ।। २९० ।।

हैरत एं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
साई फोले आत्मा, खन्डु के पतासो।
ग़हणो ढून्ढे सोन खे, मिटीअ खे कासो।
पाणी प्यासो, सामी रहे नितु नीर जो।। २९१ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है एवं विस्मय भी हो रहा है कि जीव स्वयं परमात्मा का अंश होते हुए भी उसे उसी प्रकार ढूँढता है, जिस प्रकार शक्कर का बना हुआ बताशा शक्कर को, सोने के बने हुए आभूषण सोने को, तथा मैल मिट्टी को ढूँढती रहती है। (वास्तव में सोने तथा सोने के आभूषणों में, शक्कर तथा बताशे में, मैल एवं मिट्टी में किसी प्रकार का भेद नहीं है; उनका केवल रूप ही अलग है। उसी प्रकार जीव तथा परमात्मा में भी कोई भेद नहीं है, पर अज्ञानवश जीव अपने को अलग मान बैठा है)। पानी में रहकर भी (आत्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी) जीव प्यासे का प्यासा रहता है ।। २९१ ।।

हैरत एं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
सामी ज्ञाणे पाण खे, अविनासी नासी।
कुपिड़ीअ में आकासु पियो, फाहीअ रे फासी।
पाणीअ में प्यासी, मरे पपोटो मति रे।। २९२ ।।

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्य पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अविनाशी आत्मा (जीव) अपने को नश्वर

मान बैठा है। अनन्त आकाश को छोटे घड़े में देखकर जीव बिना फन्दे की फाँसी में फँस गया है। (आकाश अनन्त है; पर जब उसकी परछाई घट में पड़ती है जो घटाकाश कहलाती है। वास्तव में घटाकाश तथा आकाश में कोई अन्तर नहीं है; भेद केवल घड़े के कारण ही उत्पन्न हुआ है। उसी प्रकार जीव परमात्मा का अंश होने पर भी अपने को उससे अलग मानता है।) जिस प्रकार जल का बुदबुदा पानी में रहकर भी उससे न्यारा दिखाई देता है, उसी प्रकार अज्ञानी जीव परमात्मा के अत्यन्त समीप होते हुए भी अपने को उससे अलग मानता है ॥ २९२ ॥

हैरत ऐं हासी, अचे हिक अचिरज ते।
सामी रहनि सरीर में, मूर्ख मवासी।
कालु न ॾिसनि कन्ध ते, जो खंयो फिरे फासी।
क्षण में खलासी, मारे कई जँहिं मुल्क जी ॥ २९३ ॥

सामीजी कहते हैं कि मुझे इस आश्चर्यपूर्ण बात पर हँसी भी आ रही है तथा विस्मय भी हो रहा है कि अहंकारी मूर्ख अपने शरीर में ही मस्त रहते हैं (आत्मा के विषय में न सोच कर शरीर के लिए ही सोच-विचार करते रहते हैं)। वे फाँसी को लेकर अपने कन्धे पर सवार उस मृत्यु को नहीं देख पाते जिसने एक ही पल में सारे देश (संसार) को मार कर नष्ट कर दिया है ॥ २९३ ॥

सभजी मति खसे, माया वदी मोह साँ।
सामी रम्ता राम जो, देरो ॾूरु ॾसे।
कढियुसि ॻर्टु ॻिचीअ मों, कँहिं दानाह दसे।
हर्दमि ॾिसी हसे, पाणु वराए पाण खे ॥ २९४ ॥

माया ने मोह से सब की बुद्धि छीन ली है, अतः (जीव को) सर्वव्यापक ब्रह्म का निवास-स्थान दूर ही दिखाई देता है। सामीजी कहते हैं किसी बुद्धिमान ने ही अपने गले से (माया की) फाँसी को निकाल दिया है। (मायापाश से मुक्त हो बैठा है।) वह सदैव अपने अहं से मुख मोड़कर, अपने स्वरूप (परमात्मा) को देखकर हँसता रहता है ॥ २९४ ॥

माया करे मजाक, मोहे मारे सभखे।
रहनि अलेपु आकास जाँ, ताल्हमन्द तराक।
समुझा जिनि सामी चए, मरी महावाक्य।
तमाँ खे तलाकु, ॾेई कढियाऊं देहिमों ॥ २९५ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब को आकर्षित कर अपने वश में कर लिया है। पर आध्यात्मिक रास्ते पर चलने वाले वे भाग्यशाली, जिन्होंने महावाक्य समझकर अपने अहंकार को मार दिया है, आकाश की भाँति निर्लिप्त रहते हैं। (सभी धर्मों तथा धार्मिक ग्रन्थों में कहा गया है कि इच्छाओं को मारने से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, अत: सच्चे सन्तों ने इस महावाक्य को समझकर अपनी इच्छाओं को मार दिया है)। उन्होंने अपने हृदय से कामनाओं को निकाल दिया है ॥ २९५ ॥

माया मति मोॻी, मोहे कई माणुहुनि जी।
भवनि काणि भोॻनि जे, ॿधा ॿ्योॻी।
माणे सुख स्वरूप जो, को जाॻयो जोॻी।
अननु अरोॻी, सामी रहे स्वभाव में ॥ २९६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने लोगों को आकर्षित कर, उनकी बुद्धि मन्द कर दी है, अत: वे दोनों में बन्धे हुए हैं (एक ओर वे परमात्मा को पाना चाहते है, तो दूसरी ओर संसार के सुखों को भोगना चाहते हैं, पर जैसा कि कहा गया है कि 'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम', उसी प्रकार ये न तो परमात्मा को ही प्राप्त कर सकते हैं और न संसार के सुखों का ही उपभोग कर सकते हैं)। वे भोगों के पीछे भटकते रहते हैं, परन्तु जागृत तथा द्वैत रोग से मुक्त योगी, स्वरूप सुख का आनन्द लूटता रहता है तथा अपने ही भावों में मस्त रहता है ॥ २९६ ॥

माया मुँझाए, माॻो कयो माणुहुनि खे।
पाणु पँहिंजो पाण में, वेठो विञाए।
सामी लधो कँहिं सूर्में, साधुअ जे साए।
वदो सो पाए, जो असुलु हुयो आदीजो ॥ २९७ ॥

माया ने लोगों को उलझन में डाल कर उन्हें मन्द बना दिया है, अत: वे अपने आप को खो बैठे हैं (अपने सच्चे स्वरूप को भुला बैठे हैं)। सामीजी कहते हैं किसी शूरवीर ने ही साधु के आश्रय से वास्तविक आदिज्ञान ढूँढकर प्राप्त कर लिया है ॥ २९७ ॥

माया मंझि मग़रूरु, मूर्ख रहनि मति रे।
कालु न ड्रिसनि कन्ध ते, कन्दो चकिनाचूर।
सामी हलनि हलीम थी, भाग्यवान भर्पूरि।
त्रिकी ताजा तूरु, कूड़ी ज्ञाणनि कल्पना ।। २९८ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया में मूर्ख बुद्धिहीन होकर घमंड करते रहते हैं। वे चकनाचूर करने वाले काल को अपने कन्धे पर सवार होते नहीं देखते हैं। पर महान् भाग्यशाली विनम्रता का बर्ताव करते हैं। वे अभी-अभी तूर नामक पर्वत से फिसल कर आये हैं, अतः वे सारे प्रपंच को झूठा मानते हैं। (ईश्वरीय ज्योति के देखने के पश्चात् वे सारे प्रपंच को झूठा मानते हैं)। तूर—यह एक पर्वत का नाम है। कहा जाता है कि हज़रत मूसा इसी पर्वत पर पश्चिम की ओर मुख कर जब प्रार्थना करते थे तब उन्हें वहाँ ईश्वरीय ज्योति दिखाई देती थी; अतः जिन्हें ईश्वरीय प्रकाश का दर्शन होता है उनके लिए कहा जाता है कि ये तूर पर्वत से आये हुए हैं ।। २९८ ।।

माया रंग रचो, भारी भेद मर्म जो।
मोहे मारे सभखे, करे कालु कचो।
को सुजाग़ो सूर्मो, बला खों बचो।
सामी सुखु सचो, ग़ोल्हे लधाईं साधसंगि ।। २९९ ।।

माया ने भारी भेद तथा भ्रम का खेल रचा है। वह सबको आकिषत कर, चकनाचूर कर मार देती है। सामीजी कहते हैं कि वही जागृत शूरवीर (ज्ञानी) इस नागिन से बच पाया है जिसने साधुओं के संग से सच्चा सुख (आत्मज्ञान) ढूंढ कर प्राप्त कर लिया है ।। २९९ ।।

परे खों परे, माया महबूबनि जी।
कहीं पातो कीन की, अन्तु उथानु करे।
गुमु कयुसि कँहिं ज्ञाति साँ, ज्ञानवानु गहरे।
सामी ड्रिसी ठरे, पँहिंजे अख्यें पाणखे ।। ३०० ।।

सामीजी कहते हैं कि प्रियतम की माया अगम है, कोई भी (व्यक्ति) इसका अन्त नहीं पा सका है। (माया का अन्त पाना अत्यन्त ही कठिन है।) पर किसी गंभीर ज्ञानवान ने इसे अपने ज्ञान के बल पर नष्ट कर दिया है, अतः वह अपने ही नेत्रों से अपने (स्वरूप) को देख कर शीतलता का अनुभव कर रहा है ।। ३०० ।।

आ समयदोळ्—

इदु मायामयमोंद- ❋ लिदु कोटचानुकोटि रथमेनल् वैरिबलं
बेंदरे मनोजवदिं परि-❋ दुदु पूर्णमनोरथं रथं दशरथना ।। ५८ ।।

अंतु परिदु नेरेद राजन्यकमं पळियंते पलायनशीलम्माडि हेमप्रभनं मुट्टेवंदु—

कडुकेय्दु गंडवातं ❋ नुडिदिदिरादंते गंडनागेनुतं कै
मुडगदे दशरथनेच्चं❋सिडिलळ्गिडिगळवोलंबनंबट्टुविनं ।। ५९ ।।

अंतिसुवुदुं—

उडियॆ पळयिगे वरूथं ❋ कॆडॆयॆ भुजादंड वज्रमय कोदंडं
कडिकंडमागे परिपडे ❋ पोडर्पु हेमप्रभं हतप्रभनादं ।। ६० ।।

आ समयदोळ् दशरथनभयघोषणेयोडने जयपताके नभमनळ्ळरियॆ बीरसेनेयोडने सोयंबर सेसेयनांतु पौरजनद मनदोडने कौतुकमंगळ पुरमं पुगुवागळ्—

ओडिसिदातनीतनिदिराद विरोधिगळं विलासदिं
रोडिसिदातनीतनसमायुधनं तनगोल्दु मालेयं
सूडिसिदातनीतनवनीश्वर कन्येयनेंदु तोरि मा-
ताडिदुदोल्दु नोडिदुदु पौर वधूजनमादिराजनं ।। ६१ ।।

उस समय—दशरथ का रथ उसके मनोरथ-सा शत्रुदल पर घुसा। शत्रुओं को लगा कि यह कोई जादू तो नहीं है ! करोड़ों-करोड़ों की संख्या में मानो रथ चल रहे हैं। वे भयभीत हुए। ५८ इस तरह घुसकर, राजकुमारों के समूह को भगाकर, हेमप्रभा के पास आकर बोला—जिस तरह शौर्य दिखाकर, पौरुष की बात करके, मेरा सम्मान किया है, उसी तरह मुझे जीतकर पुरुष बनो। ऐसा कहकर दशरथ ने अपने हाथों को विश्रांति दिये बिना बिजली की चिनगारी के समान उस पर बाणों की वर्षा की। ५९ इस तरह बाण प्रहार करने पर—हेमप्रभा का ध्वज टूट गया। रथ उलट गया। उसकी बाहें एवं बज्रमय धनुष टूट गये तो हेमप्रभा प्रभाहीन हुआ। ६० —दशरथ ने अभय की घोषणा की जय-पताका लिये आकाश में गुंजरित कर देनेवाली वीरसेना के तुमुल-विजय-नारों के बीच स्वयंवर के अक्षत को धारण कर, पुरजनों के जयजयकारों के साथ कौतुकमंगलपुर में प्रवेश करते समय—सामने आये हुए शत्रुओं को अनायास हरा दिया। "इसी ने शत्रुओं का अपहास का कारण बनाया है, कामदेव की प्रसन्नता से, इसी ने राजकुमारी से स्वयंवर-माला प्राप्त कर ली थी" इस तरह सोचकर नगर की स्त्रियों ने प्रसन्नता से उसे देखा। ६१ —इस तरह नगर

अंतु पुरमं पोक्करमनेगे बिजयंगेय्दुदुं दशरथमहीनाथनप्पुदनरिदु—

नोडिरे कन्नेयं दशरथंगनुरूपेयनीव सैपु कै
गूडिदुदेंदु तन्न विभवक्कनुरूपमेनल्विवाहमं
माडिदनुत्सवक्के पेरगोर्वरुमिल्लेने कोट्टु संतसं
माडिदनाळेळं शुभमति क्षितिनाथनिदेनुदात्तनो ।। ६२ ।।

आगळा विवाहानंतरं कैकेवेरसु दशरथनयोध्येगे जनकं मिथिळेगे पोगि मुन्निनंते सुखदिनरसुगेय्युत्तिर्दरित्तल् दशरथ नरेंद्रनोंदु दिवसं—

परिमित परिजन परिवृत * नरसं बगे दरसि तेरनेसगिद गेलवं
तरवेळे वृद्धकंचुकि * तरे बंदळ् कैके बळसिबरे सहचरियर् ।।६३।।
तरळकटाक्षं मोहन * शरमेने मेखलेय पारिहार्यद मणिनू-
पुरद मधुरस्वनं मु- * प्परिगूडिद मदनपाशमेने नडेतंदळ् ।।६४।।

अंतु बंदु—

तनिसोंकु सोंकि सिंहा * सनदोळ्तन्नोडने कैके कुळ्ळिरे पुळकं
तमगे तलेदोरे दशरथ * जनपति कैवंद कल्पतरुवं पोल्तं ।।६५।।

अनंतरमाकेय मुखारविंदमनानंद विस्फारित विलोचननागि नोडि—

में प्रविष्ट हो, राजमहल में आने पर, यह समझकर कि वह दशरथ है—(और) अपनी रूपमती बेटी का विवाह दशरथ के साथ कराने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है, ऐसा सोचकर, शुभमती ने अपने वैभव के अनुसार बड़ी धूमधाम से, असीम उत्साह से, मंगलकार्य सम्पन्न कराया। ६२ —उस समय के पश्चात् दशरथ कैकेयी के साथ अयोध्या में और जनक मिथिला लौटकर पहले की तरह ही सुख से शासन करने लगे। दशरथ ने एक दिन—सीमित परिजनों के साथ बैठकर, स्वयंवर के समय रण-विजय हासिल करा देनेवाली कैकेयी को बुला लाने के लिए कंचुकी को भेज दिया। कैकेयी सखियों के साथ सभा में आयी। ६३ उसकी तिरछी नजर मानो सम्मोहन-बाण था; दुपट्टे की सुगंधी, कंकन और नूपुर की मधुरध्वनि, मानों तीन तागों में बुना कामदेव का पाश है। वह सभा में प्रविष्ट हुई। ६४ —इस तरह आकर, अंग का स्पर्श करके वह सिंहासन पर अपने साथ बैठी तो दशरथ को तुरंत रोमांच हुआ, और वह फलों से लदे कल्पवृक्ष के समान दिखाई पड़ा। ६५ —तत्पश्चात् आनंदभरे नेत्रों से उसके मुखारविंद

ईकॆ रथमॆसगॆ वैरि प * ताकिनियं गॆल्दॆनीकॆ गॆय्दुपकृतिगा
नीकॆय बेडिदुदं नि- *र्व्याकुळमीयदॊडॆ मॆच्चु पोळ्ळारगिरदे ।।६६।।

अॆंदु परिजनद मॊगमं नोडि कैकॆयं निन्न मॆच्चिदुदं बेडिकॊ-
ळ्ळॆंबुदं—
अॆनं बेडुवॆनॆंद- * ब्जानननॆ बगॆ बॆदरॆ बगॆगॆ वंदॊडमॆय नॊ-
ल्दानॆरॆदागळॆ कुडिमॆं * दा नृपतिगॆ कैकॆ बैकॆगॊट्टळ् मॆच्चं ।।६७।।

अनंतरं निजप्रियन नियमदिनर्धासनदिनॆळ्दु पूमालॆयुमनवनि-
पतिय नयनकुवलय मालॆयुमनांतु बळ्रिल्मुडि चॆल्विगॆ मुडिगविदंतॆ
सॊगयिसॆयुं, कॊरलॊळिक्किदॆक्कसरद कॆंबट्टॆय तॊंगलनंग जंगमलतॆय
तळिर तॊंगळंतॆ पॊळॆयॆयुं, मेलुदर सॆरंगनुरॆ सॆरॆगॆय्दु पॊरपॊण्मुव पर-
भागद शरीरकांति लावण्यरसद तंदलनगुंदलॆमाडॆयुं, घननितंबबिंबमं
वळसिद नूलतॊंगल मधुरध्वनि मनुज मकरध्वजन मनमनॊडनॊडनॆ
करॆवंतडिगडिगॆ पॊण्मॆयुं, मनोजराजन नीराजन दीपकळिकॆयंतॆ
कैकॆ निजनिवासक्कॆ बिजयंगॆय्वुदुं—

नॆनॆयिसॆ पूबिनंबनपराजितॆ कण्गॆ सुमित्रॆ मैत्रियं
जनियिसॆ बीरॆ सुप्रभॆ तनुप्रभॆयं गॆळॆ कैकॆ कंतुरा-
जन जयलक्ष्मियं निजकुलांगनॆयर्पॆसर्वॆत्त नाल्वरिं
जनपन राजलीलॆ गॆलॆवंदुदु मन्मथराज लीलॆयं ।। ६८ ।।

को निहारा। "इसके द्वारा सारथ्य करने के कारण मैं शत्रु-सेना को पराजित कर सका। इसके कार्यों के प्रति संतुष्ट होकर, उसकी कोई इच्छा (माँग) हो तो पूरी कर दूँगा। न दूँ तो प्रसन्न होने का कोई मूल्य नहीं है।" ६६ —ऐसा सोचकर, परिजनों का मुख देखकर, कैकेयी से कहा—'तुम्हें जो चाहिए माँग लो' कैकेयी यह न समझकर कि क्या माँगना चाहिए और डरकर बोली—"मैं अभी नहीं बता सकती, समय आने पर माँगूगी। तब मुझपर अनुग्रह करने की कृपा करें"। इस तरह उसकी उपेक्षा (माँग) अव्यक्त ही रह गयी। ६७ —तत्पश्चात् पति की आज्ञा पाकर, आसन से उठकर, उसके हाथ से पुष्पमाला और आँखों से नीलकमल-हार को स्वीकार कर, लटकती हुई सौंदर्यवर्धक अपनी केशराशि से सुशोभित हुई; गले में धारण की हुई एकावली हार का रेशमी गुच्छ मानो कामदेव रूपी लता के अंकुरगुच्छ के समान चमका; दुपट्टा ओढ़ी हुई शोभा से देहकांति ने सौंदर्यरस को बढ़ाया; नितंब के भार से युक्त (उस रूपसी के) घुंघरू की मधुरध्वनि मानो कामदेव-रूपी दशरथ को निरंतर बुला

अंतु दशरथ महीनायनिष्ट विषयसुख संतुष्टनागिपुदुं—
अपराजिता महादे- * वि पतिव्रतॆ शील गुण कळा परिणतिथिं
नृपन मनंबडॆदुं ध- * र्म पत्नियॆनॆ पडॆदळग्रमहिषीपदमं ।। ६९ ।।

अंता कांतॆ दशरथन मनोरथ जन्मभूमियॆनिसिदॊंदुदिवसं—
ऋतुमति देवि रत्नद वितर्दिकॆयोळ्नॆलसिर्दु माधवी
लतॆय बॆडंगुवॆत्त सॆळॆयं पिडिदंगज मोहपाशमं
रति पिडिदंतॆ दॆसॆवडॆदळ् पडॆवंतु मदालसंगळा
यत नयनंगळात्म रुचि मंजरियिं कुसुमोपहारमं ।। ७० ।।

कमळाननॆगॆ दरस्मित * कुमुदाक्षिगॆ कर्णिकारकोमळॆगॆ विचि
त्रमॆ पुष्पवतिगॆ नेत्र * भ्रमराकर्षण विलासमॆनॆ सॊगयिसिदळ् ।।७१।।

अनंतरं कौशल्यॆ चतुर्थस्नान मांगल्यमनप्पुकॆय्दु—
मळयजदण्पु मल्लिगॆय सोर्मुडि निप्पॊसतप्प मौक्तिकं-
गळ तॊडवुट्टु षट्टळिगॆ दंतमरीचिगळिं बॆळर्त बा-
य्पाळिकिन पॆण्गॆ पासटियॆनिप्प विलासमनीयॆ पुष्पको-
मळॆ वधु कॊंड वॆळ्वसदनं सॆरॆगॊंडुदनंगनाज्ञॆयं ।। ७२ ।।

रही थी; ऐसे में कैकेयी ने अपने निवासस्थान के लिए प्रस्थान किया। अपराजिता पुष्पबाण-सी दिखाई पड़ी, सुमित्रा ने उसकी (दशरथ की) आँखों में स्नेह जगाया, सुप्रभा ने अपनी देहप्रभा को प्रकटित किया, और कैकेयी ने कामदेव की जयलक्ष्मी को पराजित किया। इस तरह की अपनी चार रानियों से दशरथ ने संतोष पाया। ६८ —इस प्रकार विषयसुख से दशरथ संतुष्ट हुआ तो, अपराजिता, जो प्रतिव्रता थी, ने अपने शील, गुणों से राजा को प्रसन्न किया और पटरानी के आसन को पाया। ६९ इस तरह (अपराजिता) दशरथ के मन की अभिलाशाओं की जन्मभूमि बनी हुई थी कि एक दिन—ऋतुमती हुई। वह (अपराजिता) जब रत्नपीठ पर बैठकर माधवीलता के सुंदर पल्लव को पकड़कर खड़ी थी, तब कामदेव के मोहपाश को धारण करती हुई रति के समान दिखाई पड़ी, और उसके भार से झुकी हुई आँखें आत्म-प्रभा से प्राप्त पुष्पमाला सी सुशोभित हुईं। ७० मुस्कराती हुई वह कमलमुखी, कुमुदाक्षी, पुष्पसदृश कोमलांगी पुष्पवती भ्रमर-सी आँखों से आकर्षित करती हुई ऐसा प्रतीत हुई मानो विलास-असाध्य हो। ७१ तत्पश्चात् कौशल्या ने चतुर्थस्नान करके—श्रीगंध-सुगंधित मोगरा पुष्पों से सुसज्जित हो, सुंदर घने लंबे बालों में नये मोती के आभरणों को धारणकर, शुभ्र हरी साड़ी पहनकर, दंतकान्ति से सुशोभित, वह (कौशल्या) स्फटिक से मिर्मित स्त्री के समान प्रशोभित हुई।

अंतु कैगॆय्दु—

कडॆगण्कामशरंगळं कॆदरॆ भृंगाकृष्टियं माडॆ सो-
र्मुडि लावण्य रस प्रवाह भरमं तुंगस्तनं ताळॆ के-
सडिगळ्केसर पांसुवं कॆदरॆ बंदळ् दोर्लतांदोळनं
पडॆवन्नं मणिपारिहार्य रवदिं कर्णामृतासारमं ।। ७३ ।।

शशिलेखॆ बंदु पुगवं- * तॆ शरद्थन कुट सदनमं लीलॆयिना
शशिवदनॆ बंदु पॊक्कळ् * विशाल शशिकांत कांत शय्यागृहमं ।।७४।।

अंतु पॊक्कु-

पळिकिन पळिवावुगॆयिं * तॊळगुव हंसोपधान कल्पित तल्प
स्थलदिं रंजिप रत्नद * सॆलॆमंचदमेलॆ लीलॆयिं कुळ्ळिर्दळ् ।।७५।।

आगळा गृहाधिदेवतॆयधरमणियंतॆ जलजलिसुव मणिकद सॊडर्गुडिगळुं, इक्षुचाप शरमोक्ष हुंकारदंतॆ शिलीमुख झंकार मुखरंगळॆनिसुवुपहार कुसुमंगळुं, स्मर गुरुशिष्यरंतॆ सम्मोहन मंत्रमं पदंगुट्टुव शुकशारिकॆगळुं, संभोग रसतरंगिणिय तॆरॆयुलिपदंतॆ मधुरमाद पारिवदुलिपंगळुं, मदनमोहन मूर्छॆयं बीरुवंतॆ दंतिदंतदिं कंडरिसिदंचॆविडंनेळिसि सुळिव बाल मराळंगळुं, कामकालोरग लेखॆयंतॆ निमिर्वं नीलमणिस्तंभदुन्मुख मयूखलेखॆयं कदुंकुव दीवद नविल्गळुं,

---

उसके द्वारा धारण किए हुए हर शुभ श्वेत प्रसाधन कामदेव की आज्ञा के बंधन थे। ७२ ऐसे में—उसके नेत्र कामदेव को छेड़ने लगे। लंबी सुंदर केशराशी भ्रमरों को आर्कषित करने लगी। उसके दोनों कुचों ने लावण्यरस-प्रवाह के वेग को धारण किया। अरुण कोमल चरण केसर-धूल को छेड़ने लगे। ऐसी कौशल्या अपने कोमल हाथों में पहने हुए कंगनों के हिलने से कर्णामृत ध्वनि करती हुई चली। ७३ शरत्काल के मेघाच्छादित राजमहल में जिस तरह चाँदनी प्रवेश करती है, उसी तरह कौशल्या चंद्रकांत-शिला से निर्मित अपने पति के विशाल शय्यागृह में प्रविष्ट हुई। ७४ प्रवेश करके—वह, जिसके स्फटिक पदत्राण चमक रहे थे, हंस-परों से निर्मित तकियों से सुशोभित रत्नशय्या पर बैठ गई। ७५ —तब गृहलक्ष्मी के अधरों पर सुशोभित रत्न-सदृश प्रकाशित दीप शिखाएँ, कामदेव के बाण-प्रहार के समय उत्पन्न ध्वनि के समान घेरे भ्रमरों की गुनगुनाहट के साथ सुशोभित पुष्पमालाएँ, अपने शिष्यों के साथ कामदेव द्वारा निर्मित सम्मोहन मंत्र के समान ध्वनि करनेवाले शुक-सारिका, संभोग-रस-प्रवाह की लहरों की ध्वनि के समान सुनाई देनेवाले कबूतरों के मधुरस्वर, कामकेली से मूर्छित करा देनेवाले, हस्तिदंत से रचित हंसों

पच्चेय जगलिय चेल्विगे कण्देरवियादंते तेरंबोळेव दीवद हरिणिगळ लोचन प्रतिबिंबंगळुं, चंद्रातपक्के तनिगंपादंते चंद्राकांतद चषकंगळोळ मगमगिसुव चंदनकर्दममु, मणिभाजनंगळोळ् कुसुमशर कृशानुविन पोगेयुमुरियुवेंबते मेगे नेगेव मरिदुंबिय बंबलिदेसेव कुंकुम पंकमं, कंदर्प घटसर्पदंते धूपघटदि नोगेवगरुविनपोगेयु मति रमणीयमागे—

पळिकिन शुक्तिकेयोळ् क-
णग्गोळिसुव कत्तुरिय कर्दमं हिमकरमं
डलद करेयंते नयनो-
त्यळमनलर्चिदुदु सौध शय्यागृहदोळ् ॥ ७६ ॥

उगिबगि माडि धूपद कवल्वोगेयोळ् तनिगंपनुंडु त-
ण्णगे तणिदोय्यनोय्यनिदिरुं बळियुं नेगेमुत्तुमिर्प तुं-
बिगळरिपं मनक्के तरलार्तुवु तद्गृहदेवताजनं
सोगयिसुविंद्रनील मणियिं तिरिकल्गळनाडुवंतेवोल् ॥ ७७ ॥

अंतु सोगयिसुव सेज्जेवनेयाळपराजिता महादेवि सरोवरदोळिर्प जलदेवतेयंते विलासतल्पतळदोळिपुर्दुभागळुपचरित गर्भाधान

को भी नीचा दिखाते हुए चलनेवाले अल्पायु (छोटे) कोयल, काम नामक नाग के उठाए हुए नीलरत्न स्तंभों की कांति को लजा देनेवाले पाले हुए कोयल, रत्ननिर्मित बरामदे के सौंदर्य को नयी दीप्ति-उपलब्धि के समान चमकते हुए पालतू हिरणों की आँखों के प्रतिबिंब, चाँदनी में सुगंधित चंद्रकांत के पात्रों में महकता श्रीगंध, रत्नपात्रों में कामाग्निका धुवाँ, एवं गर्मी की तरह ऊपर मँडराते हुए भ्रमर-समूह, कामचक्रेश्वर के सर्पशिशु के समान धूप के घड़े से उठते हुए गंध का धुवाँ, आँखों को रमणीय दिखाई पड़ा तो—मोती के सीप में दिखाई देनेवाली कस्तूरी चंद्रमंडल की कालिमा (कालादाग) के समान दिखाई पड़ी और उत्पलपुष्प (नीलकमल) रूपी आँखें शय्यागृह में खिलीं। ७६ दीप से उठते हुए धुवें को चीरकर, उसकी सुगंधी को गृहणकर सुतृप्त, धीरे-धीरे इधर-उधर उड़ते हुए भ्रमर इंद्रनीलमणियों से 'पत्थर का खेल' खेलते—से प्रतीत होते थे। वे भ्रमर राजमहल के निवासियों को अपनी उपस्थिति जता रहे थे। ७७ —इस शोभायमान शय्यागृह में अपराजिता, सरोवर में निवास करनेवाली जलकन्या-सी, बिस्तर पर बैठी थी कि दशरथ गर्भाधान-(सोलह संस्कारों में प्रथम संस्कार) विधियों को समाप्त करके वहाँ आया तो उसका अतिशय सुंदर रूप कामदेव से भी दुगुना सुंदर था। उसके धारण किए हुए

मंगलविधानं दशरथ महीनाथं निज निरतिशयरूपं दर्पकन रूपदर्प-मनदिर्पे भूषणमयूखलेखे चित्रभित्तिगे निर्वाणलेखेयेनिसे चरण नख किरणदिनुपहार कुसुमंगळं द्विगुणिसुत्तुमोळवुगुवुदु—

मदनं जेवोडेगेय्दवोळ् कनककांची निस्वनं पोण्मे मे-
लुदनोट्टैसि कुचं कदक्कदिसे मुग्धालोकनं लज्जेयं
पदेपं मुंदिडे मेरेदप्पे निजलावण्यार्णवं भूभजं
गिदिरेळ्दळ् सति पुष्पचाप चतुरंगं मीरिमेलेल्ववोल् ॥ ७८ ॥

आगळरसनरसिय मनःकुमुदिनियं चतुरपरिहास वचन चंद्रिकेयिंदलर्चि-

मकरतमणि मुद्रिकेयिं- ❋ नरेंद्रनंगनेय कोमळांगुलियनलं-
करिसुव नेवदिं मेल्लने- ❋ बरे तेरेदुत्संग तल्पमं दयेगेय्दं ॥ ७९ ॥

अनंतरं—

ओरोर्वर तनिसोकि ❋ दोरोर्व मेय्योळोगेये रोमांचं शृं-
गार सुधारस वारिधि ❋ तीर लताद्रमदोळोगेद कोनरेबिनेगं ॥८०॥

अंतु सूळ्गेवंदु निद्रावसर निमीलित लोचनेयागि—

दान द्विरदनमं पं- ❋ चाननमं चंडभानुवं चंद्रमनं
मानिनि निशावसानदो- ❋ ळी नाल्कुं शुभदमप्प कनसं कंडळ् ॥८१॥

आ समयदोळ् निजराजसदन सरसी सरोज रजमनाट्टिकोंडु

वस्त्र-आभूषणों की कांति देखनेवालों की आँखों में मुहर-सी लगा जाती थी। पादनखों की कांति में पहनी हुई पुष्पमालाएँ प्रतिबिंबित हो रही थीं कि वह शय्यागृह के भीतर गया। तब कामदेव मानो अपना धनुष उठाकर प्रत्यंचा को ध्वनित करता हो, कटि के आभरण स्पंदित हुए (हिले); सिरको अंचल से ढकते (घूंघट काढ़ते) समय कुच हिले, मुग्धध्वनि की आज्ञा एवं आशा को जगाने के लिए आतुरित हो, वह ऐसे उठ खड़ी हुई मानो सौंदर्यसागर ही उभर आया हो। ७८ —राजा दशरथ ने रानी के कुमुद पुष्परूपी मन को चाँदनी-रूपी अपनी चतुर एवं विनोदपूर्ण रसवार्त्ता से खिला दिया। हरे रत्न की अँगूठी से पत्नी की अंगुली को अलंकृत करने के बहाने से निकट बुलाकर, धीरे से अपनी गोद में (जाँघ पर) बिठा लिया। ७९ —तत्पश्चात्—परस्पर स्पर्श से उन्हें रोमांचन होने लगा तो वे दोनों ऐसे सुशोभित हुए मानो शृंगाररस के समुद्रतट पर स्थित लता पर अंकुर उग आए हों। ८० —इस तरह उनींदी आँखोंवाली अपराजिता ने—रात की अंतिम घड़ी में, हाथी, सिंह, सूर्य, चंद्र का

सुळिव सुप्रभात प्रभंजननुं, मदन मदकुंजरद मणियेरं मीरुव राज-
हंस कूजितमुं, दिनमुख दर्शनातुरनीयिं बर्प संध्यादेवतॆय नूपुर-
निनदमं नॆनॆयिसुव चंचरीकदिंचरयुं, उदयनगनिकुंजमनेरुव रविय
रथचक्र चीत्कारमं चल्लवाडुव रथांगरवमुं, नैदिलगॊळद सॊबगु
सॊप्पागॆ कमळिनिगॆ पुट्टिदट्टहासभनुदासीनं माळ्प कॊळर्वक्किय
कळकळध्वनियुमनुकूलमागॆ—

मंगळ पाठक रवमुं ❋ मंगळगायिनिय गीतरवमुं परिच-
यॆगनॆयर नूपुरद र ❋ वंगळुमित्तुवु सुखप्रभोधमनागळ् ।। ८२ ।।

अंतुप्पवडिसि—

व्यवहार मंगळाचा- ❋ रवॆल्लवं तीर्चि मुख्यमांगल्यमना
युवति जिनपूजॆयं मा- ❋ डि विचित्रमॆनिप्प चित्रशालॆगॆ बंदळ् ।।८३।।

अंतु बंदु मरकतमणिवेदिकॆय नडुवण चॆंबॊन्न पट्टवणॆयमेलॆ
रोहणनग नितंबदॊळ्पॊळॆव रत्न शलाकॆयंतॆ निज शरीर कांति पस-
रिसॆ कुळ्ळिर्पुदुं, आगळुभयपार्श्वदॊळं चामरग्राहिणियर्कळ् काश
कणिशंगळिंदॆसॆव शरल्लक्ष्मियं नॆनॆयिसॆ कुंचदडपद डवकॆय कन्नडिय
परिचारिकॆयर् कुसुमशर वशीकरण मंत्राधिदेवतॆय परिवार देवतॆयरॆ-
निसॆ—

मंगलस्वप्न देखा । ८१ —उस समय राजमहल के आसपास के सरोवर में खिले कमलों की सुगंधी को वहन करती हुई प्रात:पवन चलने लगी। राजहंसों का कूजन जो कामदेव के मदमाते हाथी की मणिघंटिकाओं की ध्वनि से भी मधुर था, सौंदर्य-दर्शन हेतु आतुरित हो आनेवाली संध्यादेवी की नूपुरध्वनि को स्मरण दिला देनेवाला भ्रमरों का गुंजन और उदयपर्वत के शिखर पर चढ़ते हुए सूर्यरथ के चीत्कार की हँसी उड़ाता सा चक्रवाक पक्षियों का कलरव—ये सब सुनाई पड़े; और कमलों से भरे सरोवर का सौंदर्य मंद होने के कारण सुशोभित कमलों के अट्टहास को धिक्कारता-सा सारसपक्षियों का रव अनुकूल होने पर—प्रभातगीत गानेवाले पाठकों की कंठध्वनि ने, नायिकाओं की गीतध्वनि ने, और परिचारिकाओं के नूपुरों की ध्वनि ने अपराजिता को जगाया। ८२ वह प्रात:विधियों से निपट-कर, अपने मांगल्य को पूजकर, जिन-पूजा करके चित्रशाला में आई। ८३ —वहाँ आकर नीलरत्नों से निर्मित मंच के बीचवाले सुवर्ण-आसन पर विराजमान हुई तो उसके शरीर की शोभा कनकपर्वत पर चमकती रत्नशलाका के समान दिखाई पड़ी। उसके दोनों पार्श्व से परिचारिकाएँ चवँर डुलाने लगीं तो वह हरी घासों और धान की बालियों से सुशोभित;

आठ् कोशम असल पञ्चवटी भन्याको ।
आश्रम् असल् छ रमणीय बहुत् बन्याको ।।
ताहीं बसेर कुछ दिन् तिमिले बिताऊ ।
सब् साधुमाथि करुणा तहिं गै चिताऊ ।।२१।।

यस्तो अगस्ति ऋषिको उपदेश पाई ।
श्रीराम् तयार् पनि भया तहिं जानलाई ।।
मालूम् थियो त पनि जुन् ऋषिले बताया ।
सो मार्ग जानकन पाउ उतै चलाया ।।२२।।

जान्थ्या प्रभू अलिकती पर केहि जाई ।
जंगल्‌विषे अधिक वृद्ध जटायुलाई ।।
देख्या र राक्षस भनीकन मार्नलाई ।
माग्या धनू प्रभुजिले र लिला जनाई ।।२३।।

मार्न्या कुरा सुनि जटायु बहुत् डराई ।
राजाजिको प्रिय सखा हुँ भनी कराई ।।
गर्न्याछु हित् यहिं बसी म सिताजिलाई ।
कल्याण् मिलोस् हजुरदेखि बहुत् मलाई ।।२४।।

श्रीरामले पनि तहाँ अति खुशि मन्ले ।
आनन्द निर्भय दिया पछि फेरि तिन्ले ।।

यहाँ से आठ कोस की दूरी पर एक अति उत्तम एवं रमणीय आश्रम है जिसे पंचवटी कहते हैं; तुम वहीं रहकर कुछ दिन व्यतीत करो और समस्त साधुवर्ग पर करुणा करके उनके कष्ट-निवारण का उपाय सोचो। २१ अगस्त ऋषि के ऐसे उपदेश पाकर श्रीरामजी भी जाने के लिए तत्क्षण तैयार हो गये। यद्यपि वह सब कुछ स्वयं ही जानते थे, फिर भी ऋषियों के बताये हुए मार्ग से चल पड़े। २२ कुछ दूर चल कर जंगल के मध्य में एक अत्यन्त वृद्ध गिद्ध (जटायु) को देखा। उसे राक्षस समझ कर मारने के लिए प्रभु ने धनुष माँगा। २३ मारे जाने की बात सुनकर जटायु बहुत भयभीत हुआ और चिल्लाकर कहने लगा कि मैं राजा दशरथ का प्रिय सखा हूँ और यहीं रहकर मैं सीता जी का कुछ कल्याण करूँगा; अतः आप मेरे ऊपर कृपा-दृष्टि रखें और मेरा कल्याण करें। २४ श्रीराम ने भी अत्यन्त प्रसन्न मन से उसे अभयदान दिया। तदुपरान्त उसने पुनः विनती की कि हे स्वामी! मैं आपकी शरण

खवामित् ! शरण् छु भनि खुप्सित बिन्ति लाया ।
श्रीराम् तहाँपछि त पञ्चवटी त आया ॥२५॥

डेरा पऱ्यो प्रभुजिको तहिं बीच बन्मा ।
एकान्त देखिकन हर्ष भयो र मन्मा ॥
आनन्द पूर्वक रह्या रघुनाथ ताहीं ।
आर्को त आश्रम नजीक थियेन काहीं ॥२६॥

एकान्त देखिकन लक्ष्मणले चरण्मा ।
बिन्ती गरया रघुपती ! म त छू शरण्मा ॥
ज्ञान् कुन् कहिन्छ भनि कुन् त कहिन्छ विज्ञान् ।
जान्दीनँ केहि म विषे त ठुलो छ अज्ञान् ॥२७॥

आज्ञा हवस् सकल तत्त्व म सुन्न पाउँ ।
जान्नया पुरुष् अरु छ को र करा म जाऊँ ॥
यो बिन्ति लक्ष्मणजिको सुनि हर्ष पाया ।
लक्ष्मण्जिलाइ सब तत्त्व तहाँ बताया ॥२८॥

यै ज्ञान् कहिन्छ सुन येहि कहिन्छ विज्ञान् ।
यो रीत् गरीकन बस्या हुँदि छुट्छ अज्ञान् ॥
खोलेर येहि रितले प्रभुले बताया ।
लक्ष्मण्जिले पनि तहाँ सब तत्त्व पाया ॥२९॥

यै बीचमा नजिक शूर्पणखा त आई ।
देख्या तहीं प्रभुजिले पनि दुष्टलाई ॥

में हूँ । इसके बाद श्री राम पंचवटी चले गये । २५ उसी वन के मध्य में श्रीराम जी का डेरा पड़ा । निकट में और कोई आश्रम नहीं था । एकान्त स्थान देख वे मन में हर्षित हुए और आनन्दपूर्वक वहीं रहने लगे । २६ एकान्त वन को देखकर लक्ष्मण ने श्रीरघुपति से कहा कि मैं आपकी शरण में हूँ । ज्ञान-विज्ञान का मुझे कोई ज्ञान नहीं । यही मुझमें अज्ञानता है । २७ अतः सब तत्त्वों को मुझे सुनाने की कृपा करें, क्योंकि यहाँ और अन्य कौन पुरुष है, जिसके पास मैं जाऊँ । लक्ष्मण की यह विनती सुनकर राम अत्यन्त हर्षित हुए और उन्हें तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया । २८ ज्ञान-विज्ञान के विषय में समझा कर तथा किस रीति से अज्ञान का नाश होता है, यह सभी स्पष्ट रूप से प्रभु ने बताया और लक्ष्मण ने भी उन सब तत्त्वों को सीख लिया । २९ इसी बीच शूर्पणखा भी वहाँ आ

कन्दर्पका बश परी प्रभुको नजीक् गै ।
सोधी तहाँ प्रभुजिलाइ बहूत खुश् भै ॥३०॥
नाम् सब् कह्या प्रभुजिले जब नाम सूनी ।
ऐले म भज्दछु पति भनि येति गूनी ॥
बिन्ती गरी मकन पत्नि बनाइलेऊ ।
कन्दर्पको कठिन ताप छुटाइदेऊ ॥३१॥
यस्ता वचन् सुनि सिताकन हाँसि हेरी ।
उत्तर् दिया प्रभुजिले सँगमै छ मेरी ॥
सीता बुझीकन नभज् तँ पती मलाई ।
भाई छ खालि बरु भज् पति भाइलाई ॥३२॥
साँचो भन्या भनि त लक्ष्मणका नजीक् गै ।
आयाँ म पत्नि हुन येति भनेर खुश् भै ॥
सून्या वचन् सकल लक्ष्मणले र ताहाँ ।
दास् हूँ म ता मसित कुन् सुख मिल्छ याहाँ ॥३३॥
जा वाँहि मालिक उ हुन् उँहि वस्नु अच्छा ।
बुद्धी रहेनछ बहुत् रहिछस् तँ कच्चा ॥
यस्ता वचन् सुनि र शूर्पणखा रिसाई ।
सीताजिलाइ अब खाँ भनि फर्कि आई ॥३४॥

गयी । प्रभु ने भी उस दुष्टा को देखा । घमण्ड के वशीभूत हो अत्यन्त हर्ष से भरी वह प्रभु के निकट गयी और उनसे प्रश्न किया । ३० प्रभु ने अपना परिचय दिया । उसने जब प्रभु का नाम सुना तो मन में कुछ सोचकर विनती की कि मुझे भी अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर कामदेव के कठिन ताप से मुक्त करने की कृपा करें । ३१ ऐसे वचन सुनकर सीता की ओर हँसकर देखते हुए प्रभु ने उत्तर दिया कि घर में मेरी पत्नी सीता बैठी है, अतः मुझे तुम पति न कहो । भाई लक्ष्मण अकेला है अतः उसे ही पति कहकर भजो । ३२ इस कथन को सत्य मानकर शूर्पणखा लक्ष्मण के निकट गयी और पत्नी बनने की इच्छा प्रकट करके अत्यन्त हर्षित हुई । लक्ष्मण ने उसकी बातें सुनकर कहा कि मैं तो राम का दास हूँ, मुझसे तुम्हें यहाँ क्या सुख प्राप्त हो सकता है । ३३ जहाँ अपना मालिक है, वहीं रहना उत्तम है । तुम बुद्धिहीन हो और ज्ञान में परिपूर्ण नहीं हो । ऐसे वचन सुनकर शूर्पणखा क्रोधित हुई और सीता जी को भक्षण करने के लिए दौड़ी । ३४ पृथ्वी के भारहरण-हेतु प्रभु ने बीज बोया और लक्ष्मण

भार् हर्न बीज् प्रभुजिले तहिं रोप्न आँटथा ।
लक्ष्मण्जिलाइ भनि नाक र कान काटया ।।
आज्ञा लि लक्ष्मणजिले पनि काटिदीया ।
भागी डराइकन भाइ जहाँ त थीया ।।३५।।

विस्तार् गरी त्रिशिर दूषण खर् भन्याका ।
राक्षस् पनी सुनि ति अग्नि सरी बन्याका ।।
आया जहाँ प्रभु थिया तहिं तीन भाई ।
लश्कर् समेत् अधिक जल्दि कदम् बढाई ।।३६।।

राक्षस् भनी प्रभुजिले तहिं चाल पाया ।
लक्ष्मण्जिलाइ तहिं काम् प्रभुले अह्राया ।।
हे भाइ ! आज तिमिले इ सिताजिलाई ।
गूफाविषे लागि बसीरहु जल्दि जाई ।।३७।।

एक् बात् नबोलिकन जल्दि उठेर जाऊ ।
संग्रामको बखत भो अब बेर् नलाऊ ।।
मार्छु म दुष्टकन तेज् अधिकै जनाई ।
चौधै हजार्कन सहज् टुकुरा बनाई ।।३८।।

यस्तो हुकूम् हुन गयो र सिताजिलाई ।।
लक्ष्मण्जिले सँग लिईकन जल्दि जाई ।
गूफाविषे बसिरह्या रघुनाथ् तयारी-
चाँडै भया धनु र बाण्हरु ठिक्क पारी ।।३९।।

जी के द्वारा शूर्पणखा की नाक और कान दोंनों कटवाये । इससे भयभीत होकर शूर्पणखा अपने भाई के पास भाग खड़ी हुई । ३५ खर, दूषण तथा त्रिशिरा राक्षसों को शूर्पणखा ने विस्तारपूर्वक सारी घटना सुनायी, जिसे सुनते ही अग्नि के समान अपनी सेना को लेकर शीघ्रता से तीनों भाई वहाँ पहुँचे, जहाँ प्रभु विराजमान थे । ३६ प्रभु जी ने राक्षसों को पहचान कर लक्ष्मण को कार्य सौंपते हुए कहा, "हे भाई ! आज तुम सीता को लेकर गुफा के बीच जाकर रहो । ३७ कुछ भी न कहकर शीघ्रता से उठकर चले जाओ । संग्राम का समय आ गया है, अब देर न करो । दुष्टों को मैं तीव्रता से मार डालूँगा और चौदह हज़ार सेनाओं को सहज ही में टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा । ३८ ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण जी सीता जी को लेकर तुरन्त चले गये और गुफा के अन्दर बैठे रहे । श्रीरघुनाथ भी धनुष

आया खर त्रिशिर दूषण तीन भाई ।
लश्कर् समेत् सँग लिईकन रिस् बढाई ।।
ठाकुर्जिका उपर बाणकि वृष्टि पाऱ्या ।
ठाकुर्जिले पनि ति बाण् सब काटि टाऱ्या ।।४०।।
तिन्का ति सर्व हतियार्हरु काटि टारी ।
सम्पूर्ण राक्षसहरूकन जल्दि मारी ।।
काटचा खर त्रिशिर दूषणलाइ ताहाँ ।
सम्पूर्ण राक्षस सक्या घरि चारमाहाँ ।।४१।।
माऱ्या खर त्रिशिर दूषणलाइ जस्सै ।
सीता र लक्ष्मण पनी प्रभुसीत तस्सै ।।
आया डराइकन शूर्पणखा त भागी ।
रावण् जहाँ छ उहिं जाँ भनि जान लागी ।।४२।।
रावण् जहाँ छ उहिं पौंचि विलाप गर्दै ।
सब् भाइ बन्धुहरुको मनलाइ हर्दै ।।
देख्यो तहाँ बहिनिलाइ त नाक् गयाकी ।
त्यो फेरि बुच्चि पनि कान नभै रह्याकी ।।४३।।
माया भयो बहिनिमाथि र झट्ट ऊठचो ।
विस्तार सोध्न नजिकै पनि जल्दि छूटचो ।।

और बाणों को ठीक करके तत्परता से तैयार हो गये । ३९ खर, त्रिशिरा और दूषण तीनों भाई अत्यन्त कुपित हो सेना-सहित आ गये । उन्होंने राम के ऊपर बाणों की वृष्टि की । श्रीराम ने भी उन सब बाणों को काटकर नष्ट कर दिया । ४० उनके सारे हथियारों को काट कर सब राक्षसों को भी तुरन्त मार डाला । चार घण्टे के अन्दर खर, त्रिशिरा और दूषण-सहित सारी राक्षस-सेना को समाप्त कर दिया । ४१ जैसे ही खर, त्रिशिरा और दूषण का बध हुआ, वैसे ही सीता और लक्ष्मण भी प्रभु के पास आ गये । और शूर्पणखा भयभीत होकर रावण के पास भाग गयी । ४२ रावण के पास पहुँच कर वह विलाप करने लगी । उसके दुःख से सभी भाई-बन्धु प्रभावित हो गये । उन्होंने बहन की नाक कटी हुई देखी तथा उसको कानों से भी विहीन देखा । ४३ बहन की इस अवस्था को देख वे सब करुणा से परिपूर्ण हो गये और उसके निकट जाकर उसी समय सारा हाल विस्तारपूर्वक जानने की जिज्ञासा प्रकट की । उन्होंने पूछा, हे बहन, तेरी नाक और कान काटनेवाला यह कौन

हे बैनि ! कुन् पुरुष हो भन नाक काट्न्या ।
खूबै रहेछ सहजै पनि मर्न आँट्न्या ॥४४॥

जस्ले त नाक् सित इ कान्कन आज काट्यो ।
हे बैनि ! जान सुन त्यो अग मर्न आँट्यो ॥
यस्ता वचन् सुनि र नाम समेत् बताई ।
सीता र लक्ष्मण सहित् रघुनाथलाई ॥४५॥

ती छन् पराक्रमि त पञ्चबटी बस्याका ।
ठोक्रा भिरीकन धनू पनि खुप् कस्याका ॥
गर्छू विचार मनले त यही म मान्छु ।
सब् भस्म पो गरिदिनन् कि भनेर ठान्छु ॥४६॥

आईरह्याँछु म त खुप्सित मन् डराई ।
फिर्छन् ति सर्व ऋषिलाइ त खुश् गराई ॥
आश्चर्य मानिकन दौडि म याँहि आयाँ ।
विस्तार पनी हजुरमा सब बिन्ति लायाँ ॥४७॥

सीताजिलाइ अति सुन्दरि मानि ताहाँ ।
ल्याऊँ टपक्क टिपि सुन्दरिलाइ याहाँ ॥
भन्ना-निमित्त अति चित्त धरी गयाकी ।
पायाँ विपत् नकटि बुच्चि समेत् भयाकी ॥४८॥

ल्याऊ समर्थ छ भन्या तिमि आज जाऊ ।
साम्ने त हर्न छ कठिन् तिमि मन् नलाऊ ॥

पुरुष है, जिसने सहज ही अपनी मृत्यु को आमंत्रित किया है। ४४ जिसने भी यह कुकर्म किया है, हे बहन, तुम यह जान लो कि अब वह मृत्यु को प्राप्त होनेवाला है। यह सुनकर शूर्पणखा ने सीता, लक्ष्मण और राम के नाम बता दिये। ४५ पंचवटी में तीन पराक्रमी हैं, जो तरकस एवम् धनुष-बाण धारण किये हैं, मुझे ऐसा लगता है कि ये सबका नाश कर देंगे। ४६ मैं अत्यन्त भयभीत होकर आ रही हूँ। ऋषियों को प्रसन्न करके वे घूमते रहते हैं। उनके कार्यों से चकित हो कर मैं दौड़ कर यहाँ आयी हूँ और आपके सम्मुख विस्तारपूर्वक विनती की है। ४७ सीता जी अपूर्व सुन्दरी हैं, उसे उठाकर आप यहाँ ले आयें, यही मन में विचार करके आपसे कहने आयी हूँ। नाक-कान से रहित हो कर अत्यन्त कष्ट पा रही हूँ। ४८ यदि आप में सामर्थ्य है तो आज ही जाकर सीता

एक् युक्तिले छल गरीकन हर्नुपर्ला ।
साम्ने कदापि नगया तहिं देह मर्ला ॥४९॥
तेस्ले बहूत भयमा परि बात् गऱ्याको ।
लश्कर् समेत् त्रिशिर दूषण खर् मऱ्याको ॥
सून्यो र बैह्निकन खातिर खूब दीयो ।
एकान्तमा गइ लहड् पनि खूब लीयो ॥५०॥
सामान्य मानिस भया कसरी ति माऱ्या ।
लश्कर् खर त्रिशिर दूषण छुट्टि पाऱ्या ॥
सामान्य होइन इ ता परमेश्वरै हुन् ।
नाहीं त भाइहरुको अघि तिक्तथ्यो कुन् ॥५१॥
ईश्वर् भया हुँदि कसै पनि मार्दछन् ती ।
सामान्य हुन् पनि भन्या हरुँला सिताजी ॥
ईश्वर् भया हुँदि विरोध् गरि खुश् हुन्याछन् ।
रीसै हुन्याछ भजुँला त ममाथि ता झन् ॥५२॥
येती विचार् गरि तऱ्यो र समुद्र पारि ।
मारिच् जहाँ छ ऋषिको सरि रूप धारी ॥
पूग्यो तहाँ र रथ राखि नजीक् गयाको ।
विस्तार् गऱ्यो खरहरू सब नाश् भयाको ॥५३॥

को ले आओ। पहले यह सोच लो कि सीता का सामने से हरण करना कठिन है। एक युक्ति से उसे हरण करना होगा, सामने कदापि न जाना, वर्ना मारे जाओगे। ४९ सेना-सहित खर, त्रिशिरा और दूषण के मारे जाने की ख़बर सुनकर रावण अत्यन्त भयभीत हुआ, फिर भी उसने अपनी बहन को सान्त्वना दी और एकान्त में जाकर अपने मन को बड़े प्रयत्न से उत्साहित किया। ५० राम द्वारा अपने भाइयों के संहार का समाचार सुनकर रावण बड़ी चिन्ता में पड़ जाता है। वह सोचता है कि यह राम कौन हो सकता है? जो भी हो यह कोई साधारण मनुष्य तो नहीं है, अवश्य ही यह परमेश्वर है; यदि यह साधारण मनुष्य होता तो मेरे भाइयों के सम्मुख कैसे टिक पाता? ५१ यदि राम ईश्वर होंगे तो किसी प्रकार से मार लेंगे और यदि साधारण मनुष्य होंगे तो मैं सीता का हरण कर लूँगा। ईश्वर होंगे तो मेरे विरोध पर वह प्रसन्न होंगे और भजन करने से मुझ पर क्रोधित होंगे। ५२ यह विचार करके ऋषि के समान रूप धारण कर वह समुद्र पार मारीच के पास पहुँचा। रथ को वहीं

यस्तो पऱ्यो मकन आज सहाय देऊ ।
सुन्दर् ठुलो मृग स्वरूप् तिमि आज लेऊ ॥
राम्चन्द्रलाइ छलि दूर् तिमिले गराया ।
सीता जसै म हरुँला तब फर्कि आया ॥५४॥

मारीचले यति हुकूम् जब ताहिँ सून्यो ।
तेस्तो हुकुम् सुनि तहाँ मनभित्र गून्यो ॥
बिन्ती गऱ्यो सकल तेज् प्रभुको जनाई ।
स्वामित् भनेर मनले जय खुप् चिताई ॥५५॥

कस्ले गऱ्यो र उपदेश् तिमि आज आई ।
सीता म हर्छु मृग हो तँ भन्यो मलाई ॥
त्यै शत्रु हो तिमि त्यसैकन मार ताहाँ ।
कूलै समेन् क्षय गराउन खोज्छ याहाँ ॥५६॥

को सक्छ जित्न र ठुलो तिमि सूर गर्छौ ।
यो सूर् लिया कुल समेत् तिमि आज मर्छौ ॥
एक् बाणले मकन चार् सय कोश सान्या ।
बालक् थिया तपनि भस्म सुबाहु पान्या ॥५७॥

खड़ा करके उसके निकट पहुँचा और खर आदि के मारे जाने के विषय में सविस्तार कह सुनाया। ५३ मेरे ऊपर आज ऐसी समस्या आ पड़ी है, तुम मेरी सहायता करो। तुम आज एक अत्यन्त सुन्दर मृग का रूप धारण करो और छल से रामचन्द्र को दूर तक ले जाओ और जैसे ही मैं सीता का हरण कर लूँ, वैसे ही तुम चले आना। ५४ मारीच ने यह आज्ञा सुनकर अपने मन में विचार किया और प्रभु के सम्पूर्ण पराक्रम का वर्णन कर विनती की, और स्वामी कहकर मन में जय-जयकार किया। ५५ उसने कहा कि किसके उपदेश को सुनकर आज तुम आकर सीता-हरण के लिए मुझे मृग बनने को कह रहे हो। यदि वह शत्रु है तो तुम उसे ही मार डालो, नहीं तो वह तुम्हारा सम्पूर्ण कुल ही समाप्त कर देगा। ५६ उन्हें कौन जीत सकेगा, जो तुम ऐसी धारणा बना रहे हो। ऐसा विचार करना उचित तथा कल्याणकारी नहीं, उनसे युद्ध करने पर तुम कुल-सहित नष्ट हो जाओगे। उनके बाण के एक प्रहार से मैं चार सौ कोस दूर जा गिरा। जिस समय वह एक बालक थे, उस कोमल अवस्था में भी उन्होंने सुबाहु को भस्म कर दिया। ५७ आज मैं मृग-रूप धारण करके वन में गया। उनके एक ही बाण ने मुझे पछाड़ दिया।

च्रोटुन सीनु य्युतुन तस ज़ोरुह नाला ।
दौपुन तस कुन बु कस कौरथस हवाला ।।
स्यठाह ल्युथ गोस यंत्र रथ ओस हारान ।
दपन यी ओस वौन्य कीकी बो मारन ।।
वुछिन प्रथ जायि कौशल्यायि निश व्राव ।
वदन दौपनस यि कंम्य छुन मोसूमन वाव ।। २५ ।।

वनुम वुन्य क्याह सपुन नतु वन्य ख्यमय वेह ।
दौपुस तमि टाठि गोबरो ब्रोंठु कनि बेह ।।
कंरुन दीवानगी सीनस दितुन चाक ।
स्यठा कीकीयि प्यठ सांपुन ग़ज़बनाक ।।
दौनवय कलु ह्यथ तमि ललु नाविन ।
जिगर मुच्रुरिथ तिमन सौराख हाविन ।।
वदन दौपनक लंसिव तौहि आंसिनव आय ।
मे छम तस रामुचन्द्रस खोतु तुहुंज़ माय ।।
दौपनक क्रूद त्राविथ रूज़ितव वौन्य ।
तसुन्द कारन मे निश तौह्य बूज़ितव वौन्य ।। ३० ।।

अपना सिर उन्होंने पत्थरों से टकराया और पत्थरों को अपने सिर से टकराया । (वे कहने लगे) अँधेरे तले खोये उस प्रकाश को अब मैं कहाँ से पाऊँ ? अपना सीना चाक कर उन्होंने ज़ोर से आवाज़ दी—(हे तात !) आपने मुझे किस के हवाले कर दिया ? (इस प्रकार) उन्होंने अपनी ख़ूब दुर्गति की तथा (आँखों से) रक्त (के आँसू) बहाने लगें और कहने लगे कि अब मैं कैकेयी को मार डालूँगा । उसने उसे (कैकेयी को) हर कहीं ढूँढा और (ढूँढते-ढूँढते) कौशल्या के कमरे में प्रविष्ट होकर रोते हुए कहा—हम मासूमों को यह किसने काल-कवलित कर डाला । २५ (आप) शीघ्रतापूर्वक कहें कि यह सब कैसे हुआ, अन्यथा मैं ज़हर खालूँगा । तब उसने (कौशल्या ने) कहा—मेरे लाल ! सामने बैठ और ध्यान से सुन । दीवानगी के आलम में उसने अपना सीना चाक कर डाला और कैकेयी के ग़ज़ब (ज़्यादतियों) का वर्णन किया । दोनों (भरत व शत्रुघ्न) के सिरों को उसने सहलाया और अपना जिगर खोलकर उसमें सूराख़ दिखाये । राते-रोते उसने कहा—अब तुम दोनों ख़ुश रहो और चिरायु हो । मुझे अब उस रामचन्द्रजी से तुम दोनों की ही चाह है । अब क्रोध त्यागकर शान्त हो जाओ और उस कारण को विस्तार से सुनो । ३० तब उसने

दपन तंम्य माजि प्यठ वाराह नन्यर वौन ।
क़बीलु खौंतु वाराह दाद गव नौन ।।
वुछिव वौन्य क्याह तिथिस राज़स बनिथ आव ।
च्युतुन ज़ुव ज़्यविह प्यठ ह्यथ गोबरु सुन्द नाव ।।
ख़बर छा रामुचन्द्रन बूज़ या ना ।
डण्डक वनु मंज़ुह रोटमुत तंम्य मकाना ।। ३३ ।।

बरथ जी सुन्द डण्डक वन गछुन

अंछिव लोग रथ हरांने
रामु रामु लोग परांने
शेरि प्यठु ताज त्रोवुन
बरथ राज़ु मंगुनोवुन
तनि जामु मंत्र रोवुन
रामु रामु लोग परांने ।। १ ।।

शापस कैंह न यलाज
बरथो शेरि द्यू ताज
मोल मंरिथ मांज करया राज
रामु रामु लोग परांने ।। २ ।।

(भरत ने) अपनी माँ के सम्बन्ध में खुलकर बातें की और उसके क़बीले (परिवार) की अन्य बातें नंगी हो गईं। देखिए, उस राजा (तक) की क्या हालत हो गई। उसने जीभ पर पुत्र का नाम लेते-लेते अपनी जान दे दी। मगर क्या ख़बर रामचन्द्रजी ने ये शब्द सुने अथवा नहीं। वे तो दण्डक-वन में वास कर रहे हैं। ३३

भरतजी का दण्डकवन जाना

(राजा) आँखों से रक्त बहाने लगा और राम-राम पढ़ने लगा। (उन्होंने) सिर से ताज उतार दिया और भरत को बुलाया। तन से सभी वस्त्र उतार दिये और राम-राम रटने लगा। १ शाप का कोई इलाज नहीं है। हे भरत! अब तुम सिर पर ताज पहनो। पिता के मरणोपरान्त क्या माता राज कर सकेगी? और राम-राम रटने लगा। २ आसमान में शोर हुआ और जहाँ में कँपकँपी हुई। राजा

शोर गव आसुमानस
ज़िलु ज़िलु गव जहानस
राज़ुह खोंत प्यठ व्यमानस
रामु रामु लोंग परांने ॥ ३ ॥

संमिथ आव सोर क्रोनुय
कोंत गव राज़ुह सोनुय
चारु नो केंह ति ज़ोनुय
रामु रामु लोंग परांने ॥ ४ ॥

संमिथ आव सोर कबीलु
वन्याहस ज़ारु तु विलु
कालस केंह नु हीलु
रामु रामु लोंग परांने ॥ ५ ॥

च्रंसिथ आव सोर आलम
कीकीयि प्यठ कोरुख ज़म
कालस क्याह तम्युक ग़म
रामु रामु लोंग परांने ॥ ६ ॥

कीकी लंज्य वदांने
बुथिस लंज्य रब लदांने
मंरिथ गव क्याह में बने
रामु रामु लोंग परांने ॥ ७ ॥

सोंम्यतर लंज्य रिवांने
ज़ोरुह लंज्य नालु दिने

विमान पर चढ़ा और राम-राम रटने लगा। ३ सारा कुटुम्ब एकत्र हो गया। (सभी कहने लगे) हाय ! हमारा राजा कहाँ चला गया। होनी के सामने कोई चारा नहीं लगता। और राम-राम रटने लगा। ४ सारा क़बीला सम्मिलित हुआ और (राजा से रुकने के लिए) ख़ूब मनुहार व मिन्नतें कीं। काल के सामने कोई बहाना नहीं चलता और राम-राम रटने लगा। ५ सारा आलम सिमट कर आ गया और कैकेयी की सभी ने भर्त्सना की। काल को किसी का ग़म नहीं और राम-राम रटने लगा। ६ कैकेयी रोने लगी और मुँह पर कीचड़ मलने लगी। वे तो मर गये मगर मेरा अब क्या होगा; और राम-राम रटने लगा। ७

बौंद फेरि यी सपांने
राम् राम् लोंग परांने ॥ ८ ॥

कौंशल्या आयि नालन
सोंम्बुल करिन दोंन गुलालन
दोंपुन तन नार्ह ज़ालन
राम् राम् लोंग परांने ॥ ९ ॥

कौंशल्यायि दोंप तिमन दोंन
ह्योंर खोंत किनु वोंथुम बोंन
सोंम्यत्रायि दोंप फरुम सोंन
राम् राम् लोंग परांने ॥ १० ॥

मारनि लूख लंग्य पान
कीकियि प्यठ करुख हान
कालस क्याह छु अवमान
राम् राम् लोंग परांने ॥ ११ ॥

शतुरगुन चाख दिथ द्राव
बोज़ुनु कैंह नु तस आव
दोंपुन प्यव मांसूमन वाव
राम् राम् लोंग परांने ॥ १२ ॥

बरथ राज़ह द्राव लारन
अंछिव किन्य खून हारन

सुमित्रा विलाप करने लगी और ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगी—बुद्धि फिर जाने पर यही होता है; और राम-राम रटने लगा। ८ कौशल्या ज़ोर-ज़ोर पुकारने लगी—दो गुलों को उसने (राजा ने) मुरझा डाला। अब यह तन मैं अग्नि में जला डालूँ; और राम-राम रटने लगा। ९ कौशल्या ने उन दोनो (भरत व शत्रुघ्न) से कहा—क्या वे ऊपर गये या नीचे। सुमित्रा ने कहा—हमें अपनी ही सौत ने धोखा दिया; और राम-राम रटने लगा। १० सभी लोग सिर पीटने लगे और कैकेयी को दोष देने लगे। काल के सामने कुछ नहीं चलता; और राम-राम रटने लगा। ११ शत्रुघ्न (वस्त्रों को) चाक करते हुए निकल पड़े और उन्हें कुछ भी न सूझा। (वे कहने लगे) हम मासूम अब काल-कवलित हो गए; और राम-राम रटने लगा। १२ भरतजी पीछे-पीछे चल दिये और (आँखों से) खून

डण्डकवन वोत छारन
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १३ ॥

वुछुन येंलि सिरियि रूपस
ग्रहऩु सुत्य गोंट गोमुत तस
कोंठ्यन तान्य वोतमुत मस
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १४ ॥

वुछुन येंलि मंलिशि ख़ाऩु
होरुन ओंश दाऩु दाऩु
प्योमुत ज़न आसमाऩु
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १५ ॥

बरथन येंलि सु हाल ड्यूठ
वंसिथ प्यव तान्य पथर ब्यूठ
दोंपुन पादन दिमस म्यूठ
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १६ ॥

बुछिन पम्पोश हिश तन
सर्पंन्यमुत्र ख़ाक हन हन
मंथिन तिम पाद न्यत्रन
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १७ ॥

दोंपुस तंम्य राम़ु ज़ुवन
बर्‌थ़ु छुख क्याज़ि रिवन

बहाने लगे। (सभी रामचन्द्रजी को) ढूँढते-ढूँढते दण्डकवन पहुँच गए; और राम-राम रटने लगा। १३ (भरत ने) सूर्य-रूप (रामचन्द्रजी) को ग्रहण द्वारा धूमिल हुआ देखा। उनके केश घुटनों तक बढ़े हुए देखे और राम-राम रटने लगा। १४ जब उन्होंने (भरत ने) रामचन्द्रजी की कुटिया देखी तो (उनकी) आँखों से अश्रु के दाने प्रवाहित हुए। वे जैसे आसमान से नीचे गिरे और राम-राम रटने लगा। १५ जब भरत ने यह हाल देखा तो वे गिरकर नीचे बैठ गए। उन्होंने कहा मैं (रामचन्द्रजी के) पादों को चूम लूँ, और राम-राम रटने लगा। १६ (भरत ने) कमल जैसे तेल को ख़ाक के समान मुरझाया हुआ देखा। उनके (रामचन्द्रजी के) पादों को (उन्होंने) अपने नेत्रों के साथ मला (मिलाया); और राम-राम रटने लगा। १७ तब रामचन्द्रजी ने कहा—

कौतू छुख योर यिवन
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १८ ॥

बबन माजि कौरम़ु समवाद
वुछुम क्याह् छुम यि रौंयदाद
यैति योर छुम न कैंह् याद
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ १९ ॥

बबस प्यठ नाल़ु त्रोवुन
दांद्य लद मन्द़ु छोवुन
बांयिस हाल बोवुन
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ २० ॥

बरथन हाल वौंनुनस
वंसिथ प्यव ज़ंफ औंनुनस
दौपुन कंम्य कोरुस बेकस
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ २१ ॥

किथव पुछि ओस सुय साथ
बबन कंर असि दौंहस राथ
बुमो प्योसस च़्यतस ज़ाथ
राम़ु राम़ु लोंग परांने ॥ २२ ॥

दौंख तु दांद्य सख़्त त्रांलिन
दर्मक्य वाद़ु पांलिन

हे भरत ! तुम क्यों (इस प्रकार) विलाप कर रहे हो ? और भला तुम यहाँ क्योंकर आये ? और राम-राम रटने लगा। १८ माता-पिता ने मुझे कुछ कहा है। (आप स्वयं) मेरा हाल देखकर (उस बात का) अनुमान लगा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मुझे कुछ भी याद नहीं है; और राम-राम रटने लगा। १९ (भरत) पिता के लिए विलाप करने लगे और अपने आप की निंदा करने लगे । भाई (राम) से सारा हाल कहा; और राम-राम रटने लगा। २० भरत ने हाल कहा (जिसे सुनकर रामचन्द्रजी) अचेत होकर गिर पड़े। वे कहने लगे--यह मुझे किसने असहाय बना डाला ! और राम-राम रटने लगा। २१ वे हमारे एक मात्र सहायक थे। उनकी मृत्यु ने अब हमारे दिन को रात बना दिया। उन्होंने मुझे (अंतिम समय में) स्मरण तो नहीं किया ? और राम-राम

दॊह यॆलि नख वालिन
रामु रामु लॊग परांने ॥ २३ ॥

वॊन्दुह वारियाह गोस
बरथस कुन वनान ओस
मन्दियन अनि गॊट गोस
रामु रामु लॊग परांने ॥ २४ ॥

कुसू ह्यकि व्याद कासिथ
यि ओसुम ज़िन्दुह आसिथ
बु नो वॊन्य तोर ह्यकय यिथ
रामु रामु लॊग परांने ॥ २५ ॥

वदुनि लॊग बब च्यतस प्योस
तिथुय युथ शुर सतु मोस
न्यठन च्रुह दिथ बॊरुन बोस
रामु रामु लॊग परांने ॥ २६ ॥

मॆ नो वॊन्य कॊह कर्यम ह्यान
बु कस करु मटि पनुन पान
कॊतू च्रॊलहम च्रुह बगवान
रमु रामु लॊग परांने ॥ २७ ॥

कॊतू च्रॊलहम मॆ त्राविथ
कसू ह्यकु हाल बाविथ

रटने लगा। २२ (उस राजा ने) खूब दुःख और संकट सहकर धर्म के वचन पाले। जब दिन पूरे हो गये और राम-राम रटने लगा। २३ (रामचन्द्रजी के) दिल को काफ़ी ठेस पहुँची। दिन में ही उनकी आँखों के सामने अन्धेरा छा गया तथा भरत से कहने लगे—और राम-राम रटने लगा। २४ अब मेरा यह दुःख कौन दूर कर सकता है? क्या यह दुःख मुझे ज़िंदा रहकर देखना था? अब मैं वहाँ (अयोध्या) नहीं जा सकता और राम-राम रटने लगा। २५ पिता की याद आने पर वे (पुनः) रो उठे, वैसे ही जैसे सात मास का शिशु रोता है। वे (बेबसी में शिशु की तरह) अँगूठा चूसने लगे और राम-राम रटने लगा। २६ अब मेरी कोई क़द्र नहीं करेगा। भला मैं अपने आपको किसके भरोसे रखूँ। हे मेरे भगवान्! आप कहाँ चले गये? और राम-राम रटने

अनी कुस मनु नाविथ
रामु रामु लोंग परांने ।। २८ ।।

सिरियस लोंगमु ग्रहनुय
मे नो ज़ाह मोल ज़ोनुय
वुछित योति हाल सोनुय
रामु रामु लोंग परांने ।। २९ ।।

बरथो गछ़ नगर कुन
कौशल्या यूर्य सोज़ुन
मे नो वौन्य तोर छु युन
रामु रामु लोग परांने ।। ३० ।।

गटि योंलि सूर फोंल गाश
सिरियन त्रोव प्रकाश
बरथस सूर यिनुच आश
रामु रामु लोंग परांने ।। ३१ ।।

श्री रामु सुन्द बबस वदुन

दपन पंज़्य किन्य बब गोंबुरस नरायन ।
वतव प्यठ लूख बबु रुस्यतोंन छि लायन ।।

लगा । २७ आप मुझे छोड़कर कहाँ चले गये । मैं अब अपना हाल किससे कहूँ । आपको अब कौन मनाकर ला सकेगा और राम-राम रटने लगा । २८ मुझ सूर्य को ग्रहण लग गया । आज तक मैंने पिता के मूल्य को कभी नहीं जाना । अब यहाँ आकर हमारा हाल देख लेना और राम-राम रटने लगा । २९ हे भरत ! अब तू नगर (अयोध्या) की ओर जा और कौशल्या को इधर भेज देना । मैं अब वहाँ नहीं जा सकूँगा और राम-राम रटने लगा । ३० रात का अन्धेरा दूर होकर जब प्रभातागमन हुआ और सूर्य ने अपना प्रकाश छोड़ा तो भरत को (रामचन्द्रजी) के आने की आशा धूमिल दिखाई दी और राम-राम रटने लगा । ३१

श्रीराम का अपने पिता के लिए विलाप करना

सत्य कहा गया है कि पुत्र के लिए पिता नारायण (के समान) होता है । जिनके पिता नहीं होते उन्हें लोग सड़कों पर पीटते हैं ।

हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु । तेरे दानै कीमति ना पवै तिसु दाते कवणु सुमारु ॥ २ ॥ संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु । देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ॥ ३ ॥ घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पवंनि । सदण हारा सिमरीऐ नानक से दिह आवंनि ॥ ४ ॥ १ ॥

सोहिला राग गउड़ी दीपकी महला १

सत्संगी के गृह जिस ईश्वर का यशगान होता है, कर्त्ता-पुरुष-सृजनहार की प्रशंसा होती है, हे भाइयो ! आप उस निर्भय प्रभू का यशगान कीजिए । गुरुदेव कहते हैं, मैं उस ईश्वरीय यशगान् करनेवालों पर बलिहार होता हूँ, जो प्रतिदिन अर्हनिश तेरी याद में, तेरे ध्यान में ही मग्न रहते हैं, और उनकी महिमा मुझसे कही नहीं जा सकती । मृत्यु अवश्यं-भावी है, यह जाननेवाले, सांसारिक पदार्थों की लिप्सा से परे, निर्लेप रहते हैं—और आकांक्षा करते हैं कि हे सज्जनो ! आओ, हमें आशीष देवो कि हमारा प्रभु से मिलाप हो सके । सभी जीवों के लिए मौत (यम) का डंका बजता रहता है, और सबकी बारी आती रहती है । गुरुदेव कहते हैं, हे सज्जनो ! उस मृत्यु को सदैव याद रखो और मृत्यु के दाता को याद रखो, तभी मुक्ति संभव है ।

रागु आसा महला १

छिअ घर छिअ गुर छिअ उपदेस । गुरु गुरु एको वेस अनेक ॥ १ ॥ बाबा जै घरि करते कीरति होय । सो घरु राखु वडाई तोय ॥ १ ॥ रहाउ ॥ विसुए चसिआ घड़ीआ पहरा थिती वारी माहु होआ । सूरजु एको रुति अनेक । नानक करते के केते वेस ॥ २ ॥ २ ॥

राग आसा महला १—गुरुदेव कहते हैं कि छः शास्त्र हैं । छः उनके रचयिता हैं, और वे सभी भिन्न-भिन्न प्रकार के उपदेश देते हैं । परन्तु उन छहों रचयिताओं का एक स्वामी है, जिससे मिलने का मार्ग-दर्शन वे कराते हैं । वे प्राणी ! जिस स्थान पर कर्त्ता पुरुष निवास करता है, वहीं तेरा निवास-स्थान होना चाहिए, वहीं तुझे मान-मर्यादा प्राप्त होगी । (१५ बार आंखें बंद करने और खोलने के समय को विसा कहते हैं, १५

विसियों का एक चसा, और ३० चसियों का एक पल, ६० पलों की एक घड़ी, और ८ घड़ियों का एक पहर, ८ पहरों का एक रात-दिन और १५ तिथियाँ, १२ महीने और ६ ऋतुएँ होती हैं) जिस तरह भिन्न-भिन्न ऋतुएँ, तिथियाँ एवं अवस्थाएँ होती हैं, उसी तरह इनके क्रिया-कलाप हैं। परन्तु सूर्य तो एक है जो सबके ऊपर समान रूप से छाया हुआ है। गुरुदेव कहते हैं, ईश्वर एक है परन्तु उसके विभिन्न नाम-रूप और मत हैं।

रागु धनासरी महला १

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती। धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥ १ ॥ कैसी आरती होय। भवखंडना तेरी आरती। अनहता सबद वाजंत भेरी ॥ १ ॥ रहाउ ॥ सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही। सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥ २ ॥ सभ महि जोति जोति है सोय। तिस दै चानणि सभ महि चानणु होय। गुरसाखी जोति परगटु होय। जो तिसु भावै सु आरती होय ॥ ३ ॥ हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा। क्रिपा जलु देहि नानक सारिंग कउ होय जा ते तेरै नाइ वासा ॥ ४ ॥ ३ ॥

राग धनासरी महला १—गुरु नानकदेव जी अपनी यात्राओं के बीच जगन्नाथपुरी गए। वहाँ जब आरती आरंभ हुई तो गुरुदेव बैठे रहे। उस पर वहाँ के पंडितों ने रोष प्रकट किया। तब गुरुदेव ने आरती का उच्चारण यों किया और कहा "हे सज्जनो! सारा आकाश थाल-स्वरूप है। चन्द्रमा और सूर्य दीये हैं। गगनमंडल मोतियों की तरह शोभायमान है। समस्त मलयागिरि (चंदन) धूप है। पवन, अर्थात् वायु चवँर कर रही है और समस्त प्रकाशमान वनस्पति फल-फूल हैं। हे भगवन्! ये सभी तेरी आरती दिन-रात कर रहे हैं।

हे जन्म-मरण का दुःख दूर करनेवाले! तेरे जीव अहर्निश तेरा यशगान करते हुए नाद (शब्द) कर रहे हैं। तेरे तो हज़ारों नेत्र हैं, हजारों मूर्तियाँ हैं, (परन्तु हमारे पास वे नेत्र कहाँ जो तेरे दर्शन कर सकें)। तेरे हज़ारों चरण हैं जो मैल-रहित हैं, नासिकाएँ हैं जो रस-रंग-भेद से परे हैं। मैं आश्चर्य-चकित हूँ कि किस-किस का वर्णन करूँ। वह ज्योति-स्वरूप परमात्मा सबमें विराजमान है, और उसकी किरणों का उजाला

सब पर छाया हुआ है। गुरु जी के उपदेशों को ग्रहण करने से ही वह ज्योति हमारे बीच प्रगट होती है। हे प्रभू ! जो तुझे भाए वही तेरी आरती है। हरी के चरणकमलों में मेरा मन-रूपी भँवरा दिन-रात पपीहे की भाँति पी-पी करता उसके नाम की पिपासा-रट लगाए हुए है। हे प्रभू ! मुझ पपीहे को अपनी कृपा का अमृत पिलाओ जिससे मेरा मन शीतल हो जावे।

रागु गउड़ी पूरबी महला ४

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे। पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनि हरि लिव मंडल मंडा हे ॥ १ ॥ करि साधू अंजुली पुनु वडा हे। करि डंडउत पुनु वडा हे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे। जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥ २ ॥ हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे। अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभ खंड ब्रहमंडा हे ॥ ३ ॥ हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वडा हे। जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥ ४ ॥ ४ ॥

राग गउड़ी पूरबी महला ४—हे भाईयो ! काम-क्रोध-रूपी विकारों से यह मन-शरीर भरा पड़ा है, जिनका नाश केवल गुरुदेव की प्राप्ति से ही संभव है। जिन्होंने ईश्वर की कृपा से उपरोक्त रीतियों से उसकी प्राप्ति कर ली है, उनका मन उसी में रम गया है। सच्चे साधु संन्यासियों के आगे नमस्कार और दण्डवत करने का बड़ा लाभ है—मायाधारी—माया में लिप्त रहनेवाले इसका स्वाद नहीं ले पाते, क्योंकि उनके अन्दर अहंकार रहता है। उनके ऊपर यम का भय सदैव छाया रहता है और अपनी जीवन-यात्रा में हमेशा दुखी रहते हैं। परन्तु जो प्रभूभक्त हैं, उन्होंने जन्म-मृत्यु के भय पर विजय प्राप्त कर ली है और सदैव सुखी रहते हैं। हे प्राणी ! जिन्होंने जन्म-मरण से रहित परमात्मा को प्राप्त कर लिया है, वे खंडों-ब्रह्माण्डों में शोभा प्राप्त करते हैं। हे प्रभू ! हम तेरे नाचीज़ बंदे हैं, सेवक हैं, भवसागर से हमारी रक्षा कीजिए और अपनी शरण में ले लीजिए। गुरुदेव कहते हैं, हे प्रभू ! हमें आपके चरण-शरण का ही आसरा है, और आपके नाम की ही टेक है, जिससे हमें सुखशान्ति प्राप्त होती है।

रागु गउड़ी पूरबी महला ५

करउ बेनंती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला। ईहा खाटि चलहु हरिलाहा आगै बसनु सुहेला ॥ १ ॥ अउध घटै दिनसु रैणा रे। मन गुर मिलि काज सवारे ॥ १ ॥ रहाउ ॥ इहु संसारु बिकारु संसे महि तरिओ ब्रहम गिआनी। जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥ २ ॥ जा कउ आए सोई बिहाझहु हरि गुर ते मनहि बसेरा। निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा ॥ ३ ॥ अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे। नानक दासु इहै सुखु मागै मो कउ करि संतन की धूरे ॥ ४ ॥ ५ ॥

राग गउड़ी पूरबी महला ५—हे मित्रो ! मैं विनय-रूप में आप से कहता हूँ कि यही समय, संतसेवा करने का है। जिह्वा से ईश्वरीय गुणों का गान करना, कानों से सुनना और स्नेहपूर्वक संतसेवा करना ही सार्थक है। इस मानवजीवन में हरी के नाम-रूपी लाभ को कमाओ और अपना जीवन सार्थक करो। यह आयु तो दिन-प्रतिदिन कम होती जाती है। इसलिए हे मन ! गुरु जी से मिलने का प्रयत्न करके अपने जीवन को सँवार ले। यह संसार तो विषय-वासनाओं, नाना विकारों से भरा हुआ है। इससे पार निकलने का मार्ग ढूँढ, अर्थात् ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर। वह ईश्वर जिस पर अपनी कृपादृष्टि करे उसे मोह-माया के जाल से हटाकर, नाम का रस पिलाता है। अतः हे प्राणी ! जिस मनोरथ से तू इस संसार में आया है, उसे ही पूरा करने का प्रयत्न कर कि हरी-नाम के सिमरन को मन में बसा सके; फिर तू जन्म-मरण के चक्करों, अर्थात् आवागमन के फेरों से बच जावेगा। हे अन्तर्यामी ! मेरे मन की श्रद्धा भी पूरी करो। गुरुदेव कहते हैं, मैं सेवक आपसे यही माँगता हूँ कि मुझे संतों के चरण स्पर्श करने का मौक़ा मिले। उनकी चरण-धूलि से अपने मस्तक को पवित्र कर सकूँ, एवं साधु-संगत में ही जीवन व्यतीत करूँ।

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि ॥

रागु सिरीरागु महला पहिला १ घरु १

मोती त मंदर ऊसरहि रतनी त होहि जड़ाउ । कसतूरि कुंगू अगरि चंदनि लीपि आवै चाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ १ ॥ हरि बिनु जीउ जलि बलि जाउ । मै आपणा गुरु पूछि देखिआ अवरु नाही थाउ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ धरती त हीरे लाल जड़ती पलघि लाल जड़ाउ । मोहणी मुखि मणी सोहै करे रंगि पसाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ २ ॥ सिधु होवा सिधि लाई रिधि आखा आउ । गुपतु परगटु होय बैसा लोकु राखै भाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ३ ॥ सुलतानु होवा मेलि लसकर तखति राखा पाउ । हुकमु हासलु करी बैठा नानका सभ वाउ । मतु देखि भूला वीसरै तेरा चिति न आवै नाउ ॥ ४ ॥ १ ॥

राग श्रीराग महला पहला १ घरु १—श्री गुरु नानकदेव जी को जब कलियुग ने धन-रूप-यश-प्रभुता आदि का लालच देने की बात कही तो उत्तर में उन्होंने यह शब्दोच्चारण किया और कहा कि हे प्रभू ! यदि आपकी कृपा से ईंट और पत्थर के स्थान पर मोतियों, हीरे-जवाहरातों से जड़ित महल प्राप्त हो जावें जिनमें कस्तूरी-केसर-चंदन आदि सुगंधियाँ चारों तरफ अपनी सुंगध बिखेर रही हों, फिर भी हे प्रभू ! कहीं ऐसा न हो कि मैं इन ऐश्वर्यों में खोकर तुझे भूल जाऊँ । तेरे नाम के फल-स्वरूप शाँति के स्थान पर, मेरे मन में पशुवृत्तियाँ न उत्पन्न हो जावें । मेरे गुरु परमेश्वर ने मुझे बता दिया है कि उस प्रभू के अतिरिक्त और कोई स्थान ऐसा नहीं है जिसकी शरण में उपरोक्त सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य प्राप्त हो सकें । हे प्रभू ! यदि धरती हीरे-जवाहरातों से जड़ी हुई हो, शय्या पर लाल लगे हुए हों, मनमोहक सुंदरीयाँ विचित्र हाव-भावों से युक्त नागमणि की भाँति चमक रही हों, तथापि कहीं ऐसा न हो कि मैं इन सांसारिक सुखों में लीन होकर तुझे भुला बैठूँ । मैं रिद्धियों-सिद्धियों का स्वामी हो जाऊँ, करामातें करने लगूँ, कभी प्रगट हो जाऊँ कभी गुप्त

हो जाऊँ, लोग मुझ में श्रद्धा रखने लगें, फिर भी हे प्रभू ! कहीं ऐसा न हो कि मैं तुझे भुला बैठूँ। मैं बादशाह हो जाऊँ, चँहुदिशि मेरा यशगान हो, भारी संख्या में सेना एकत्र कर लूँ, सिंहासन पर विराजमान रहूँ, केवल आज्ञाएँ देता रहूँ, परन्तु यह सब व्यर्थ हवा की भाँति हैं, जब तक तू याद है। अतः हे प्रभू ! कहीं ऐसा न हों कि इन सांसारिक भोग-विलासों में तुझे भुला बैठूँ ?

सिरीरागु महला १

कोटि कोटी मेरी आरजा पवणु पीअणु अपिआउ। चंदु सूरजु दुइ गुफै न देखा सुपनै सउण न थाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ १ ॥ सावा निरंकारु निज थाइ। सुणि सुणि आखणु आखणा जे भावै करे तमाइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ कुसा कटीआ वार वार पीसणि पीसा पाय। अगी सेती जालीआ भसम सेती रलि जाउ। भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ २ ॥ पंखी होइ कै जे भवा सै असमानी जाउ। नदरी किसै न आवऊ ना किछु पीआ न खाउ ॥ भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ३ ॥ नानक कागद लख मणा पड़ि पड़ि कीच भाउ। मसू तोटि न आवई लेखणि पउणु चलाउ ॥ भी तेरी कीमति ना पवै हउ केवडु आखा नाउ ॥ ४ ॥ २ ॥

श्रीराग महला १—गुरु जी कहते हैं, हे प्रभू ! यदि मेरी आयु करोड़ों ही वर्षों की हो, पवन-आहारी बन जाऊँ, ऐसी गुफाओं में वास करूँ जहाँ चन्द्रमा और सूर्य की किरणें भी न पहुँचें, विश्राम करने का स्थान तक न हो, फिर भी हे प्रभू ! मैं तेरी कीमत नहीं आँक सकता कि तू कितना विशाल है। हे सच्चे परमेश्वर ! तू अपने स्थान पर स्वयं महिमावान् है। जिस पर कृपादृष्टि करता है, वही तेरा गुणानुवाद करने लगता है। यदि मैं अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ, उनमें घाव पैदा कर दूँ, चक्की में डाल कर पीस दूँ, आग में जला दूँ, भस्म अथवा राख के साथ सारे शरीर को मल डालूँ, फिर भी तेरी महिमा का वर्णन नहीं कर सकता। तेरी कीमत नहीं आँक सकता कि तू कितना विशाल है। यदि मैं पंछी हो जाऊँ, आकाश में विचरण करने लगूँ, किसी को दृष्टिगत न होऊँ, कुछ भी न खाऊँ न पीऊँ अर्थात् पवन-आहार करने लगूँ, फिर भी हे प्रभू ! मैं तेरी कीमत नही आँक सकता कि तू कितना विशाल है। गुरू नानकदेव जी कहते हैं कि यदि सारी वनस्थली कागज बन जाए, उस पर पवन

लेखक हो, सारी प्रकृति स्याही का काम करे, उस पर अंकित तेरा यश हो, गुणगान हो, फिर भी तेरी महिमा अवर्णनीय है। मैं तेरी कीमत नहीं आँक सकता कि तू कितना विशाल है।

सिरीरागु महला १

लेख बोलणु बोलणा लेखै खाणा खाउ। लेखै वाट चलाईआ लेखै सुणि वेखाउ। लेखैं साह लवाईअहि पड़े कि पुछण जाउ ॥१॥ बाबा माइआ रचना धोहु। अंधै नामु विसारिआ ना तिसु एह न ओहु ॥ १ ॥ रहाउ ॥ जीवण मरणा जाइ कै एथै खाजै कालि। जिथै बहि समझाईऐ तिथै कोइ न चलिओ नालि। रोवणवाले जेतड़े सभि बंनहि पंड परालि ॥ २ ॥ सभु को आखै बहुतु बहुतु घटि न आखै कोइ। कीमति किनै न पाईआ कहणि न वडा होइ। साचा साहबु एकु तू होरि जीआ केते लोअ ॥३॥ नीचा अंदरि नीच जाति नीची हू अति नीचु। नानकु तिन कै संगि साथि वडिआ सिउ किआ रीस। जिथै नीच समालीअनि तिथै नदरि तेरी बखसीस ॥ ४ ॥ ३ ॥

श्रीराग महला १—अपने पिता मेहता कालू जी को श्री गुरु नानकदेव जी लेखे-जोखे के बारे में बताते हुए कह रहे हैं—मानव-मात्र का हसना बोलना, खाना-पीना, चलना-फिरना, कार-विहार, सुनना-समझना, श्वास लेना, सोना, उठना-बैठना, अर्थात् सारे क्रियाकलाप उस परमात्मा के लेखे के अन्दर हैं। उसकी इच्छा के विरुद्ध एक पत्ता भी हिल नहीं सकता। फिर-पढ़े लिखे लोगों से—विद्वानों से क्या पूछना है, जब कि यह सत्यता सब पर प्रगट है। हे भाई ! यह सब माया का पसारा है—केवल धर्म-कर्म ही यथार्थ है। नाम-सिमरन का ही आसरा लो, जिससे यह जीवन भी सफल हो और परलोक भी सँवरे। संसार में आये हर व्यक्ति को जाना है, जिसे कर्त्ता के चरणों में ही अर्पण करना चाहिए। जब जीव के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा होगा तब कोई भी उसका साथ नहीं दे सकता। वहाँ तो अकेले ही हिसाब देना है, बाकी सगे-संबंधी, मित्र-सखा परिवार तो केवल व्यर्थ का रोना रोते हैं। सभी लोग यही इच्छा करते हैं कि मेरे पास सर्वाधिक समृद्धि हो। कोई यह नहीं कहता कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं, जितना मेरे पास है, उसी में संतुष्ट हूँ। उस परमात्मा ने जो देना है—मिलना तो वही है, अतः कहने-सुनने से क्या लाभ ? हे सच्चे ईश्वर ! तू ही एक दाता है, सबको आवश्यकतानुसार उपलब्ध कराता है। हम तुच्छ ज्ञानवाले बुद्धिहीन अपने प्रारब्ध पर

विश्वास और संतोष न करके और पर और माँगते रहते हैं। गुरू नानक-देव जी कहते हैं, हे प्रभू ! मुझे नीचों में नीच—सबसे नीच व्यक्तियों की संगत दे दे, परन्तु वे सभी तेरा यशगान करनेवाले, तेरी स्तुति करनेवाले हों। मुझे बड़ों से क्या लेना है, क्योंकि उन छोटों पर तेरी दयादृष्टि होती है। वे, अंहकारी दुनियादार या बड़प्पनवाले न होकर, तेरी याद में ही खोये रहते हैं, तेरे चरणों से जुड़े रहते हैं।

सिरीरागु महला १

लबु कुता कूड़ु चूहड़ा ठगि खाधा मुरदारु। पर निंदा पर मलु मुख सुधी अगनि क्रोधु चंडालु। रस कस आपु सलाहणा ए करम मेरे करतार ॥ १ ॥ बाबा बोलीऐ पति होइ। ऊतम से दरि ऊतम कहीअहि नीच करम बहि रोइ ॥ १ ॥ रहाउ ॥ रसु सुइना रसु रुपा कामणि रसु परमल की वासु। रसु घोड़े रसु सेजा मंदर रसु मीठा रसु मासु। एते रस सरीर के कै घटि नाम निवासु ॥ २ ॥ जितु बोलिऐ पति पाईऐ सो बोलिआ परवाणु। फिका बोलि विगुचणा सुणि मूरख मन अजाण। जो तिसु भावहि से भले होरि कि कहण वखाण ॥ ३ ॥ तिन मति तिन पति तिन धनु पलै जिन हिरदै रहिआ समाइ। तिन का किआ सालाहणा अवर सुआलिउ काइ। नानक नदरी बाहरे राचहि दानि न नाइ ॥ ४ ॥ ४ ॥

श्री राग महला १—काशी नगरी में जब गुरू नानकदेव जी गए तो पंडितों ने कहा, हे गुरुदेव ! क्या कारण है कि परमेश्वर का नाम हृदय में नहीं ठहरता ! तब गुरुदेव ने उत्तर दिया, "लोभ करना, झूठ बोलना, ठग के खाना, पर-निंदा करना, क्रोध करना, रसास्वादन में लगे रहना, अपनी प्रशंसा स्वयं करना आदि शारीरिक विकार हैं, जो परमेश्वर के नाम को जीवों के हृदय में रुकने नहीं देते। अतः हे भाई ! ऐसी वाणी बोलो, जिससे इज़्ज़त हो, मान-सम्मान प्राप्त हो, और उत्तम विचारवालों को ईश्वर के दरबार में स्थान प्राप्त हो। निम्न विचारवालों का वहिष्कार हो सोना-चांदी-स्त्री-चंदन की सुंगधि, घोड़े, सेज, भव्य महल, खट्टा-मीठा, मांस आदि ऐसे रस हैं जो मानवमात्र को परमेश्वर से दूर कर देते हैं। फिर जिस शरीर के साथ इतने रस हों—वहाँ ईश्वर का निवास कैसे और कहाँ होगा ? अतः सत्य बोलो, सच्चाई पर रहो—जिस पर टिकने से परमात्मा की प्राप्ति होती है और इज़्ज़त मिलती है। हे मूर्ख अज्ञानी मन ! सुन ले—झूठ बोलने से निन्दा होती है, और ईश्वर के दरबार में

तद् वारि पावनं प्राप्तं मेधारूपां वसुन्धराम् । सञ्चीय प्राचलत् कर्णमार्गेण च शुभेन तत् ।।
स्थले सुमानसे श्रेष्ठे प्रपूर्य स्थिरतां गतम् । चिरायितं तत् सुखदं शीतं रुचिकर तथा ।।

बरं सुरम्यं मतितो विचार्य न्यवेशि संवादचतुष्टयं यत् ।
अस्यास्ति तद् घट्टचतुष्टयं सत् पूतस्य कान्तस्य सरोवरस्य ।। ३६ ।।

सप्त काण्डप्रबन्धाः सत्सोपानान्युत्तमानि च । मनः प्रमोदते येषां ज्ञानाक्षिभ्यां निरीक्षणात् ।।
बाधहीनं निर्गुणञ्च महिमानं प्रभोस्तु यम् । वर्णयिष्ये स एवास्य वार्यगाधं वरं मतम् ।।
वारि पीयूषसदृशं श्रीसीतारामयोर्यशः । उपमाश्च तरङ्गाणां विलासोऽस्ति मनोरमः ।।
कोमला चारुचौपाई सघना पद्मिनी मता । युक्तयः शुक्तयश्चात्र मञ्जुमुक्ताजनिप्रदाः ।।
छन्दांसि सोरठा दोहा मञ्जुवृत्तानि यानि सत् । तान्येव बहुवर्णानि भान्ति पद्मकुलानि तत् ।।
औपम्यरहितोऽर्थः सुभावो भाषा च शोभना । त एव केसरः पुष्परस आमोद उत्तमः ।।
सुकृतानां समूहस्तु भृङ्गानां मञ्जुमालिका । ज्ञानं विरागो रुचिरो विचारो मानसौकसः ।।
ध्वनिवक्रोक्तिकवितागुणपुञ्जाश्च ये स्थिताः । ते सर्वे मञ्जुला मीना विविधा वारिगा मताः ।।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाश्चतुर्विधाः । ज्ञानविज्ञानयोर्यच्च वर्णनं सुविचारितम् ।।
रसा नव जपस्तद्वत् तपोयोगविरागकौ । सर्वे वारिचरास्तेऽस्मिंस्तडागे रुचिरे ध्रुवम् ।।
पुण्यात्मसाधुसन्नाम्नां गुणानां गायनानि तु । विचित्रवारिविहगकुलसादृश्यवन्त्यदः ।।
सतां सभामु परितः सहकारघनावलिः । ऋतुराजवसन्तेन समा श्रद्धा प्रकीर्तिता ।।
विधानैर्विविधैर्भक्तेर्बहुधा सुनिरूपणम् । क्षमा दया दमश्चैव रस इत्याजगौ श्रुतिः ।।
अनेकानां प्रसङ्गानां सन्ति या इतराः कथाः । ता एवात्र खगा नानावर्णाः शुकपिकादयः ।।

रोमाञ्च आरामवनद्रुवाट्यः सुखं विहारः सुविहङ्गमानाम् ।
कान्तेन नेत्रेण सुचित्तमाली सिञ्चत्यहो तान् प्रियताजलेन ।। ३७ ।।

गायन्तीदं चरित्रं ये सावधानेन चेतसा । त एवास्य तडागस्य चतुराः सन्ति रक्षकाः ।।
एतत् सदा ये शृण्वन्ति नरा नार्यश्च सादरम् । देवश्रेष्ठास्त एवास्य मानसस्याधिकारिणः ।।
येऽतिदुष्टा विषयिणो बकाः काकाश्च सन्ति ते । न यान्ति दुर्भगास्तेऽमुं निकषा मानसं सरः ।।
यतः शम्बूकवर्षाभूशैवालसदृशा ध्रुवम् । विषयाख्यरसस्यात्र न सन्ति विविधाः कथाः ।।
अत एवात्रोपयान्तो विजिता हृदि भाविताः । वराका बककाकाभाः सर्वे विषयलोलुपाः ।।
सन्त्यत्रागमने नूनं काठिन्यानि बहून्यपि । न सम्भवत्यागमनमत्र रामकृपां विना ।।
घोरः कुसङ्गः कुपथो वर्ततेऽतिभयानकः । कुसङ्गिनां वचश्चैव व्याघ्रसिंहभुजङ्गमाः ।।
गैहिकानीह कर्माणि प्रपञ्चा विविधाश्च ये । सर्वेऽतिदुर्गमाः शैलास्ते विशालतमा मताः ।।
मोहो मदस्तथा मानः पर्याप्तविषमं वनम् । बहुरूपाः कुतर्काश्च सरितः सन्ति भीषणाः ।।

श्रद्धाख्यपाथेयविवर्जिता ये येषां न सद्भिः सह सङ्गमश्च ।
येषां प्रियो नास्ति च रामचन्द्रस्तेभ्योऽस्त्यगम्यं बहु मानसं तु ।। ३८ ।।

यदयेतेषु पुनः कश्चित् कष्टं सोढ्वा व्रजेदपि । तर्हि प्राप्तावेव निद्राकम्पस्तं बाधते भृशम् ।।
आयाति जडताशीतं विषमं तस्य चेतसि । प्राप्तोऽप्येतत् सरस्तस्मात् स्नानं नाप्नोति दुर्भगः ।।
न शक्येते स्नानपाने कर्तुं तेन सरोवरे । अभिमानेन सहितः स परावर्तते ततः ।।
यदि कश्चित् सरोवार्तां प्रष्टुमायाति तं पुनः । सरोनिन्दां तर्हि कृत्वा स तं बोधयति ध्रुवम् ।।
एते विघ्ना न बाधन्ते तं मानसनिषेवणे । रामः सुकृपया दृष्ट्या यं विलोकयते जनम् ।।

सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥
ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह कें रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह ऐहिं सर भाई। सो सत्संग करउ मन लाई॥
अस मानस मानस चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥
भयउ हृदयँ आनंद-उछाहू। उमगेउ प्रेम-प्रमोद-प्रबाहू॥
चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥
सरजू नाम सुमंगल-मूला। लोक-बेद-मत मंजुल कूला॥
नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि। कलिमल-तृन-तरु-मूल-निकंदिनि॥

दो०—श्रोता-त्रिबिध-समाज पुर, ग्राम, नगर, दुहुँ कूल।
संत-सभा अनुपम अवध, सकल सुमंगल-मूल॥ ३९॥

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम-समर-जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥
जुग बिच भगति देवधुनि-धारा। सोहति सहित सुबिरति-बिचारा॥
त्रिबिधताप-त्रासक तिमुहानी। रामसरूप-सिंधु समुहानी॥
मानस मूल, मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥
बिच-बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर-तीर बन-बागा॥
उमामहेस-बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥
रघुबर-जनम अनंद-बधाई। भवँर-तरंग-मनोहरताई॥

दो०—बालचरित चहु बंधु के, बनज बिपुल बहुरंग।
नृप, रानी, परिजन-सुकृत, मधुकर-बारिबिहंग॥ ४०॥

सीय-स्वयंबर-कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥
सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध राम-बरबानी॥
सानुज-राम-बिबाह-उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥
कहत-सुनत, हरषहिं-पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥
रामतिलक हित मंगल-साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी॥

दो०—समन अमित उतपात सब, भरत-चरित जपजाग।
कलि-अघ, खल-अवगुन-कथन, ते जलमल, बग, काग॥ ४१॥

कीरति-सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि, पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता-सिव-ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभुजनम-उछाहू॥
बरनब राम-बिबाह-समाजू। सो मुद मंगलमय रितुराजू॥
ग्रीषम दुसह राम-बनगवनू। पंथकथा खर आतप-पवनू॥
बरषा घोर निसाचर-रारी। सुरकुल-सालि-सुमंगलकारी॥
रामराज-सुख, बिनय, बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥
सतीसिरोमनि सिय-गुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत-सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस, बरनि न जाई॥

स एव सादरं स्नानं करोत्यस्मिन् सरोवरे । महाघोरैस्त्रिभिस्तापैः स कदापि न तप्यते ।।
कदापि ते नरा नैव त्यजन्तीदं सरोवरम् । येषां चित्ते मञ्जुभावो वर्तते रामपादयोः ।।
हे भ्रातरो य एतस्मिन् सरसि स्नातुमीहते । मनः संयोज्य सत्सङ्गं स कुर्यात् प्रयतं नरः ।।
विलोक्य मानसाक्षिभ्यामीदृशं मानसं सरः । अवगाह्य च सञ्जाता मतिः सुविमला कवेः ।।
आनन्दो हृदये जातस्तथैवोत्साह एव च । प्रेम्णः प्रमोदस्य चापि प्रवाहः प्रोद्गतः परः ।।
तस्मात् सा सुभगा भव्या निर्गता कविता नदी । यस्यां रामस्य विमलं यशो वार्यस्ति सम्भृतम् ।।
अस्या नामास्ति सरयूर्मूलं सन्मङ्गलस्य च । लोकवेदमतं कूलद्वयं सर्वाङ्गमञ्जुलम् ।।
इयं सुमानससुता पुनीता परमा नदी । मूलात् कलिमलाख्यानां तृणद्रूणां निकन्दिनी ।।

त्रिरूपसच्छ्रोतृसमाज एव कूलस्थपूर्ग्रामहापुराणि ।
सतां सभा चानुपमास्त्ययोध्या मूलं समेषां वरमङ्गलानाम् ।। ३९ ।।

रामभक्तिस्वरूपां सा गत्वा देवतरङ्गिणीम् । रामसत्कीर्तिसरयूः शोभना मिलिता तया ।।
पावनं भ्रातृयुक्तस्य यशो रामस्य युद्धगम् । महानदः शोणभद्रः पावनो मिलितस्तया ।।
भक्तेर्देवतरङ्गिण्या धारा मध्ये द्वयोस्तयोः । शोभतेऽतितरां ज्ञानवैराग्याभ्यां युता शिवा ।।
त्रिमुखेयं नदी तापत्रयत्रासविधायिनी । याति रामस्वरूपाख्यं समुद्रं प्रति सन्ततम् ।।
इयं मानसमूलाप्ता देवनद्या सुसङ्गता । करोति पावनं चेतः सरयूः शृण्वतां सताम् ।।
मध्ये-मध्ये कथा नाना विचित्रा या निवेशिताः । ता एव ननु तीरस्था वनोपवनराजयः ।।
उमामहेशोद्वाहे ये ज्ञातयः पक्षयोर्द्वयोः । त असङ्ख्या जलचराः सन्त्यस्यां बहुरूपिणः ।।
हर्षाभिनन्दनानीह यानि श्रीरामजन्मनः । तान्यावर्ततरङ्गाणामस्यां नद्यां मनोज्ञता ।।

तद्बन्धुयुग्मद्वयबाललीलाः पद्मानि नाना बहुरूपभाञ्जि ।
राजेन्द्रराज्ञीपरिवारपुण्यं भृङ्गास्तथा वारिविहङ्गवृन्दम् ।। ४० ।।

सीतास्वयम्वरकथा यास्यामस्ति सुशोभना । सा शोभनां कान्तिमस्यां सरय्वां जनयत्यहो ।।
अनेकाः पटवः प्रश्नास्तरण्योऽस्यां महोज्ज्वलाः । सविवेकान्युत्तराणि कैवर्ताश्चतुराः स्मृताः ।।
इमां श्रुत्वानुकथनं यत् प्रवृत्तं परस्परम् । तदेव सरितस्तीरे पान्थानां शोभते व्रजः ।।
क्रोधः परशुरामस्य घोरा धारा प्रकीर्तिता । रामस्य वचनं श्रेष्ठं घट्टा बद्धा दृढं वराः ।।
भ्रातृयुक्तस्य रामस्य विवाहस्योत्सवोऽस्ति यः । स एव सर्वसुखद उद्गमोऽस्याः शुभो मतः ।।
येऽमुं कथां वदन्तश्च शृण्वन्तो रोमहर्षिणः । त एवास्यां सुकृतिनः स्नान्ति सुप्रीतमानसाः ।।
रामराज्याभिषेकाय यच्च माङ्गल्यसज्जनम् । पर्वयोगे तदेवास्यां यात्रिणां ननु सङ्गमः ।।
कैकेय्याः कुमतिस्त्वस्यां जलनीली प्रकीर्तिता । यस्याः फलं महाघोरा घना सा विपदागता ।।

सर्वामितोत्पातविनाशकारि जपश्च योगो भरतस्य वृत्तम् ।
तिष्याघदुष्टावगुणालिचर्चा जलस्य पङ्कं बकवायसाश्च ।। ४१ ।।

रामकीर्तिनदी चैषा सर्वर्तुषु सुखावहा । अतीव शोभमाना च सदैवात्यन्तपावनी ।।
शिवाशिवविवाहोऽस्यां हेमन्तर्तुर्मुदावहः । रामजन्मोत्सवश्चास्यां सुखदः शिशिरो मतः ।।
श्रीरामस्य विवाहस्य यत् समाजस्य वर्णनम् । मुन्मयो मङ्गलमयस्तदेव ऋतुपार्थिवः ।।
ग्रीष्मर्तुर्दुस्सहो रामवनप्रस्थानमीरितम् । वनमार्गकथा तीव्र आतपः पवनस्तथा ।।
वर्षर्तुरीरितं युद्धं प्रचण्डं राक्षसैः सह । यो देवकुलशालिभ्यो रम्यमङ्गलकारकः ।।
सुखं विनयसम्मानौ रामराज्यगुणा इमे । त एत एव विशदा सुखदा शोभना शरत् ।।
गाथा गुणानां सीतायाः सतीशीर्षमणेस्तु या । सैवास्याः पयसः स्वच्छस्तथैवानुपमो गुणः ।।
भरतस्य स्वभावोऽस्या रम्या शीतलता तथा । न शक्यते वर्णयितुं सन्ततैकरसा च या ।।

दो०—अवलोकनि, बोलनि, मिलनि, प्रीति, परसपर हास।
भायप भलि चहु बंधु की जल-माधुरी-सुबास ॥ ४२ ॥

आरति, बिनय, दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस - पिआस, मनोमल - हारी ॥
राम - सुप्रेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलि-कलुष-गलानी ॥
भव - श्रम - सोषक, तोषक - तोषा। समन दुरित, दुख, दारिद, दोषा ॥
काम, कोह, मद, मोह - नसावन। बिमल बिबेक - बिराग - बढ़ावन ॥
सादर मज्जन - पान किए तें। मिटहिं पाप - परिताप हिए तें ॥
जिन्ह ऐहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए ॥
तृषित निरखि रबि-कर-भव-बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी ॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि-गुनगन गनि, मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी-संकरहि, कह कबि कथा सुहाइ ॥ ४३(क)॥
अब रघुपति-पदपंकरुह, हियँ धरि, पाइ प्रसाद।
कहउँ जुगल मुनिबर्य कर मिलन-सुभग-संबाद ॥ ४३(ख)॥

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिन्हहि राम-पद अति अनुरागा ॥
तापस, सम, दम, दया - निधाना। परमारथ - पथ परम सुजाना ॥
माघ मकरगत रबि जब होई। तीरथपतिहिं आव सब कोई ॥
देव, दनुज, किंनर, नर - श्रेनीं। सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनीं ॥
पूजहिं माधव - पद - जलजाता। परसि अखयबटु हरषहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर - मनभावन ॥
तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा ॥
मज्जहिं प्रात समेत - उछाहा। कहहिं परसपर हरि-गुन-गाहा ॥

दो०—ब्रह्म-निरूपन, धरम बिधि, बरनहिं तत्त्व-बिभाग।
कहहिं भगति भगवंत कै, संजुत-ग्यान-बिराग ॥ ४४ ॥

ऐहि प्रकार भरि माघ नहाहीं। पुनि सब निज-निज आश्रम जाहीं ॥
प्रति संबत अति होइ अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिबृंदा ॥
एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥
सादर चरन - सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे ॥
करि पूजा मुनि - सुजसु बखानी। बोले अति पुनीत मृदु बानी ॥
नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्त्व सबु तोरें ॥
कहत सो मोहि लागत भय-लाजा। जौं न कहउँ, बड़ होइ अकाजा ॥

दो०—संत कहहिं असि नीति, प्रभु ! श्रुति, पुरान, मुनि गाव।
होइ न बिमल बिबेक उर, गुर सन किएँ दुराव ॥ ४५ ॥

अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत, पुरान, उपनिषद गावा ॥

निरीक्षणं संवदनं मिलापः प्रीतिः सुहासश्च परस्परं यः।
सद्बन्धुता बन्धुचतुष्टये या सा चाम्भसः स्वादमनोज्ञगन्धौ ॥ ४२ ॥

ममार्तभावो विनयो दीनता च प्रभोः पुरः। अनल्पा लघुता नास्य रम्यनिर्मलपायसः॥
अद्भुतं सलिलं त्वेतद् गुणकृच्छ्रवणादपि। आशातृष्णां मनःपङ्कं हरतीदं ध्रुवं द्रुतम्॥
इदं सुप्रेम पुष्णाति श्रीरामविषयं स्थिरम्। कलिकल्मषजन्याञ्च ग्लानिं नाशयति क्षणात्॥
भवश्रमस्य सततं शोषकं तोषतोषकम्। पापदुःखदरिद्रत्वदोषपुञ्जस्य शामकम्॥
कामस्य क्रोधमदयोर्मोहस्य च विनाशकम्। विमलस्य विवेकस्य वैराग्यस्य च वर्धकम्॥
सादरं मज्जनेनास्मिन् पानेनास्य तथैव च। हृदयस्थानि पापानि तापाश्चायान्ति सङ्क्षयम्॥
मानसानि क्षालितानि नानेन सलिलेन यैः। भीरवस्ते वञ्चितास्तु कलिकालेन निश्चितम्॥
तृषिता भ्रान्तितो दृष्ट्वा सलिलं रविरश्मिजम्। मृगा यथा प्रधावन्ति तथा जीवाश्च दुःखिनः॥

विचार्य सन्नीरगुणान् यथाधि प्रस्नाप्य नीरे निजचित्तमस्मिन्।
स्मृत्वा भवानीगिरिशौ च सम्यक् कथां सुरम्यां कविरत्र वक्ति ॥ ४३ ॥ क

श्रीरामपादाब्जयुगं त्विदानीं धृत्वा हृदि प्राप्य ततः प्रसादम्।
निरूपये श्रेष्ठमुनिद्वयस्य सङ्गं सुसंवादमपीह रम्यम् ॥ ४३ ॥ ख

भरद्वाजो मुनिस्तीर्थराजे वसति सर्वदा। तस्य रामस्य पदयोरतीव प्रेम वर्तते॥
स तपस्वी शमी दान्तो दयायाः परमो निधिः। परमार्थपथे नूनं प्रवीणोऽतीव स द्विजः॥
माघे मकरराशिस्थो यदा भवति भास्करः। तीर्थराजं समायान्ति सर्वेऽपि प्राणिनस्तदा॥
त्रिदशा दनुजा मर्त्याः किन्नराश्च समूहगाः। सर्वेऽपि सादरं स्नान्ति त्रिवेणीसङ्गमे वरे॥
पूजयन्ति पदाम्भोजे श्रीवेणीमाधवस्य च। स्पृष्ट्वाक्षयवटं तेषां रोमहर्षश्च जायते॥
भरद्वाजस्याश्रमस्तु सर्वथातीव पावनः। अतीव रम्यः श्रेष्ठर्षिगणचित्तप्रसादनः॥
तेषामृषिमुनीनाञ्च समाजस्तत्र जायते। तीर्थानामधिपं यान्ति प्रयागं मज्जनाय ये॥
प्रातःकाले स्नान्ति तत्र ते चोत्साहसमन्विताः। गाथा हरिगुणानां ते कथयन्ति परस्परम्॥

ब्रह्म प्रगायन्ति विधिं वदन्ति तत्त्वप्रभेदानपि वर्णयन्ति।
प्रभोश्च भव्यां कथयन्ति भक्तिं तदाश्रमे ज्ञानविरागयुक्ताम् ॥ ४४ ॥

सम्पूर्णं माघमासं ते मज्जन्तीत्थम्प्रकारतः। सर्वे प्रयान्ति तदनु पुनश्च स्वं स्वमाश्रमम्॥
महांस्तत्रानन्द एवं भवति प्रतिवत्सरम्। स्नानं विधाय मकरे मुनिवृन्दानि यान्ति च॥
एकदा पूर्णमकरं कृत्वा स्नानं यथाविधि। सर्वे मुनीश्वराः पश्चात् प्रयाताः स्वं स्वमाश्रमम्॥
याज्ञवल्क्यं मुनिश्रेष्ठं परमज्ञानसंयुतम्। प्रणम्य चरणौ धृत्वा भरद्वाजो न्यवासयत्॥
प्राक्षालयत् पादपद्मे सादरं तस्य धीमतः। तमुपावेशयत् पश्चादासनेऽतीवपावने॥
पूजां कृत्वा यशः श्रेष्ठं वर्णयामास सादरम्। अतीव पूतया मृद्व्या वाण्या प्रोवाच तं ततः॥
हे नाथ संशयोऽस्त्येको महान् मम हृदि स्थितः। समग्रं वेदतत्त्वञ्च वर्तते हस्तगं तव॥
वदतस्तं संशयं मे प्रजायेते भयत्रपे। न वदामीह चेन्नूनं महती हानिरस्ति मे॥

सन्तः प्रभो! नीतिमिमां वदन्ति गायन्ति वेदर्षिपुराणपुञ्जाः।
न जायते यद्धृदि शुद्धबोधो मनोगतञ्चेद् गुरुतः प्रगुप्तम् ॥ ४५ ॥

इत्थं विचार्य कुर्वेऽहं मोहं प्रकटितं स्वकम्। प्रभो विनाशयेमं त्वं कृत्वास्मिन् स्वजने कृपाम्॥
रामनाम्नो मञ्जुलस्य प्रभावोऽस्त्यमितः सदा। गीतोऽस्त्युपनिषद्भिश्च पुराणैः साधुभिस्तथा॥

संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान - गुन - रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥
सोपि राम महिमा, मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया ॥
रामु कवन ? प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही ॥
एक राम अवधेस - कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा ॥
नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयउ रोषु, रन रावनु मारा ॥

दो०—प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु बिबेकु बिचारि ॥ ४६ ॥

जैसें मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति - प्रभुताई ॥
रामभगत तुम्ह मन - क्रम - बानी। चतुराई तुम्हारि मैं जानी ॥
चाहहु सुनै राम - गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा ॥
तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई ॥
महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥
रामकथा ससि - किरन - समाना। संत - चकोर करहिं जेहि पाना ॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी ॥

दो०—कहउँ सो मति अनुहारि अब, उमा-संभु-संबाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि बिषाद ॥ ४७ ॥

एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं ॥
संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी ॥
रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी ॥
रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई ॥
कहत, सुनत रघुपति - गुनगाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥
तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा ॥
पिता - बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी ॥

दो०—हृदयँ बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ ॥ ४८(क)॥

सो०—संकर उर अति छोभु, सती न जानहिं मरमु सोइ।
तुलसी दरसन-लोभु, मन डरु, लोचन लालची ॥ ४८(ख)॥

रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा ॥
जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा ॥
एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट - कुरंगा ॥
करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु-प्रभाउ तस बिदित न तेही ॥
मृग बधि बंधु-सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए ॥
बिरह - बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥

अविनाशी शम्भुरीश एतज्जपति सन्ततम् । सद्बोधस्य गुणानाञ्च राशिः स भगवाञ् शिवः ।।
ये केऽपि जीवाः संसारे विवर्तन्ते चतुर्विधाः । देहस्य त्यागतः काश्यां लभन्ते परमं पदम् ।।
सोऽपि रामस्य नाम्नश्च महिमास्ति मुनीश्वर । तदेवोपदिशत्यत्र दयां कृत्वा यतः शिवः ।।
पृच्छामि त्वां प्रभो! रामः कोऽस्ति कीदृक्स्वरूपधृक् । सर्वमेतत् कथय मां बोधयित्वा कृपानिधे ।।
एकस्तु रामोऽयोध्याया अधिपस्य वरः सुतः । संसारायास्ति विदितं चरितं तस्य सर्वथा ।।
तेन प्राप्तं महद् दुःखं भार्याया विप्रयोगतः । उत्पन्ने महति क्रोधे रावणश्च रणे हतः ।।

रामः स एवेश परो नु कोऽपि जपत्यमुं यं त्रिपुरारिरीशः ।
त्वं सत्यधामासि च सर्ववेत्ता मां ब्रूहि तस्मात् प्रविचार्य तत्त्वम् ।। ४६ ।।

यथा ममातितीव्रोऽयं विनाशं प्राप्नुयाद् भ्रमः । तथा तामेव कथय कथां नाथ सविस्तरम् ।।
इति श्रुत्वा स्मितं कृत्वा याज्ञवल्क्य उवाच तम् । प्रभुतां त्वं रघुपतेर्मुने जानासि सर्वथा ।।
श्रीरामस्यासि भक्तस्त्वं मनसा कर्मणा गिरा । त्वया गुप्तामपि तव ज्ञातवानस्मि चातुरीम् ।।
श्रीरामस्य गुणान् गूढांस्त्वं विज्ञातुमिहेच्छसि । अतएवासि कृतवान् प्रश्नान् मूढ इवाञ्जसा ।।
समाहितं मनः कृत्वा शृणु तात समादृतम् । श्रीरामस्यातिरुचिरां कथयामि कथामहम् ।।
महामोहः प्रसिद्धोऽस्ति विशालो महिषासुरः । श्रीरामस्य कथा रम्या कराला कालिका मता ।।
शशिनः किरणैस्तुल्या श्रीरामस्य कथा स्थिता। सन्तश्चकोराः सततं त्यक्त्वा भोगान् पिबन्ति याम्।।
शङ्कामेतादृशीमेव पुरा कृतवती शिवा । महादेवस्तदोचे तां समाधानं सविस्तरम् ।।

निरूपयिष्याम्यधुना तमेव संवादमिष्टं शिवशक्तिबद्धम् ।
यदा यतश्चापि स आस सर्वः शृणुष्व तं नङ्क्ष्यति ते विषादः ।। ४७ ।।

त्रेतायुगे प्रवृत्ते च पूर्वस्मिन् काल एकदा । ऋषेरगस्त्यस्य पार्श्वमाजगाम सदाशिवः ।।
तेन साकं जगन्माता भवान्यपि गताभवत् । सर्वस्यैवेश्वरं ज्ञात्वा पूजयामास तं मुनिः ।।
मुनिवर्यस्ततो रामकथां विस्तरतोऽब्रवीत् । प्रसन्नतामनुभवञ् शिवः शुश्राव तां कथाम् ।।
ततो मुनिर्हरेर्भक्तिं पप्रच्छ गिरिशं प्रति । लब्धवाधिकारिणं तं तां सरहस्यां शिवोऽब्रवीत्।।
गाथा गुणानां रामस्य वदञ् शृण्वन्ननेकधा । दिनानि कतिचिद् यावत् तत्रोवास सदाशिवः।।
ततस्त्रिपुरसंहर्ता मुनिमापृच्छ्य सादरम् । स्वधाम प्रस्थितो दक्षकुमार्या साकमीश्वरः ।।
तस्मिन्नेव शुभे काले भारं भञ्जयितुं भुवः । अवतारं रघोर्वंशे जग्राह श्रीपतिर्हरिः ।।
पितुर्वाक्यात् परित्यज्य राज्यं तापसवेषधृक् । व्यचरद् दण्डकारण्ये विनाशरहितः प्रभुः ।।

ध्यायन् ययौ शम्भुरपि स्वचित्ते प्राप्यं कथं दर्शनमीश्वरस्य ।
ईशोऽवतीर्णोऽस्ति सुगुप्तमेव ज्ञास्यन्ति सर्वेऽपि मयि प्रयाते ।। ४८ ।। क

महान् क्षोभ एषोऽस्ति चित्ते शिवस्य न तन्मर्म जानाति नूनं सती च ।
तुलस्याह चित्ते भयं शङ्करस्य परं लोचने दृष्टिलोभेन लुब्धे ।। ४८ ।। ख

अयाचद् रावणो मृत्युं विधिं मानवहस्ततः । सत्यं विधातुं वचनं विधेरिच्छति चेश्वरः ।।
न यास्यामि समीपे चेत् पश्चात्तापो भविष्यति । इति व्यचारयच्छम्भुः किन्तु युक्तिर्न सङ्गता ।।
रीत्यानया महादेवस्तदा चिन्तावशोऽभवत् । तस्मिन्नेवोक्तसमये दण्डकान् रावणो गतः ।।
मारीचं पापकरणे स नीचो जगृहे सह । तत्क्षणादेव मारीचः सञ्जातः कपटी मृगः ।।
वैदेहीं हृतवान् मूढः कृत्वा कपटमीदृशम् । प्रभावो विदितो नासीत् तस्मै वास्तविकः प्रभोः।।
मृगं हत्वा परावर्तद् बन्धुना सहितो हरिः । दृष्ट्वा स्वमाश्रमं रिक्तं तद्दृशोर्जलमागतम्।।
विरहेण व्याकुलोऽस्ति मनुष्य इव राघवः । उभावेव भ्रातरौ तौ सीतामन्विष्यतो वने ।।

कबहूँ जोग - बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह - दुखु ताकें ॥

दो०—अति बिचित्र रघुपति-चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमंद, बिमोह-बस, हृदयँ धरहिं कछु आन ॥ ४९ ॥

संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरषु बिसेषा ॥
भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥
जय सच्चिदानंद जगपावन। अस कहि चलेउ मनोज-नसावन ॥
चले जात सिव, सती समेता। पुनि - पुनि पुलकत कृपानिकेता ॥
सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी ॥
संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर, नर, मुनि, सब नावत सीसा ॥
तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिानंद परधामा ॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी ॥

दो०—ब्रह्म जो ब्यापक, बिरज, अज, अकल, अनीह, अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥ ५० ॥

बिष्नु जो सुर-हित नरतनुधारी। सोउ सर्बग्य जथा त्रिपुरारी ॥
खोजइ सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम, श्रीपति, असुरारी ॥
संभुगिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई ॥
अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ॥
जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
सुनहु सती तव नारि सुभाऊ। संसय अस न धरिअ उर काऊ ॥
जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई ॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा ॥

छं०—मुनि धीर, जोगी, सिद्ध, संतत बिमल मन जेहि ध्यावहीं।
कहि नेति, निगम, पुरान, आगम, जासु कीरति गावहीं ॥
सोइ रामु ब्यापक, ब्रह्म-भुवन-निकाय, पति-माया धनी।
अवतरेउ अपने भगत हित, निजतंत्र नित रघुकुलमनी ॥

सो०—लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिवँ बार बहु।
बोले बिहसि महेसु, हरिमाया - बलु जानि जियँ ॥ ५१ ॥

जौं तुम्हरें मन अति संदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू ॥
तब लगि बैठ अहउँ बटछाहीं। जब लगि तुम्ह ऐहहु मोहि पाहीं ॥
जैसें जाइ मोह - भ्रम भारी। करेहु सो जतनु बिबेक बिचारी ॥
चलीं सती सिव आयसु पाई। करहिं बिचारु करौं का भाई ॥
इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना ॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत, भलाई नाहीं ॥
होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढ़ावै साखा ॥
अस कहि लगे जपन हरिनामा। गईं सती जहँ प्रभु - सुखधामा ॥

चेचक

चेचक के प्रयोग से कहीं आपका बच्चा यदि मृत्यु से बचगया तो अंधा, गूंगा, लंगड़ा व कुरूप न हो जाय ?

- बच्चा पैदा होने के एक सप्ताह के अन्दर चेचक निरोधक टीका लगवा देना चाहिए।
- हर तीसरे वर्ष पुनर्भेद टीका लगवाना चाहिए।
- चेचक का टीका बच्चे, बूढ़े, युवा सबको लगवाना चाहिए।
- यदि आपको अपने पड़ोस में चेचक के किसी भी रोग की सूचना मिले तो तत्काल निकट के प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र तथा जनपद या नगर स्वास्थ्य अधिकारी को रोगी के पूरे पते सहित सूचना दीजिए ताकि रोग का विस्तार युद्धस्तर पर रोका जा सके।
- टीका ही चेचक से आपका बचाव कर सकता है।

ग १२४८ प्रसारितः— निदेशक, चिकित्सा स्वास्थ्य सेवा एवं परिवार नियोजन

(स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो, उत्तर प्रदेश लखनऊ)

स्थापित वर्ष १९४९:५० फ़ोन २५६३४

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

१२, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की १३४ सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियों के लगभग २२ लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है ।

लघु सिंचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधाजनक बनाते हुए कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है ।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है ।

जन-शासन प्रदेश का भविष्य संवारने के लिए कटिवद्ध

संकल्प की पूर्ति में तीव्रता और दृढ़ता

दलित वर्ग की ओर विशेष ध्यान

- नौकरियों में हरिजनों को १८ प्रतिशत अंश तुरन्त दिया जायगा।
- पचास प्रतिशत पुलिस काँन्सटेबुलों के रिक्त स्थान हरिजनों के लिए आरक्षित किए गए हैं
- वर्ष के अन्त तक चार लाख हरिजन परिवारों के लिए आवास—भूमि का आवंटन सम्पन्न कर दिया जायगा।
- आगामी मार्च तक ८७५ गाँवों में हरिजनों के लिए एक करोड़ पचीस लाख रुपयों की लागत से ५,७५० मकान तैयार कर दिये जायँगे।
- हरिजनों के उत्पीड़न के मामलों में स्थानीय पुलिस तथा सिविल अधिकारियों से जवाब-तलब किया जायगा।
- प्रदेश के सरकारी तथा गैर सरकारी डिग्री कालेजों के छात्रावासों में १८ प्रतिशत स्थान हरिजन छात्रों के लिए आरक्षित कर दिये गये हैं।

शासन सामन्तवादी प्रतिक्रियाओं का दमन करके ही रहेगा।

ग- १०२९ सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

मनुष्यो, तुम सिंह के सामने जाते समय भयभीत न होना, वह पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के नीचे सिर झुकाने से भयभीत न होना, वह बलिदान की कसौटी है। तुम बढ़ती हुई ज्वालाओं से विचलित न होना, वह स्वर्ग की परीक्षा है। पर शराब से सदा भयभीत रहना क्योंकि वह पाप और अनाचारों की जननी है।

—भगवान बुद्ध

राष्ट्र की प्रगति के लिए मद्यनिषेध हमारा पावन कर्तव्य हो।

ग— ५८३ मद्यनिषेध एवं समाजोत्थान विभाग,
उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित।

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ—३

१—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड मूल्य १०·००

२—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ादः (आर्यपुत्र) ,, ४·००

३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ४·००

४—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० १५·००

५—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् (धर्म खण्ड) —देवनागरी लिपि में ,, ४·००

६—(मलयाळम्) महाभारत—पौलोम-आस्तीक पर्व ,, ४·००

७—ज़ादे सफ़र (इस्लामी ह़दीस) ,, १२·००

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुऱळ्   २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तेलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एऴुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ११—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१२—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१३—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १४—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१६—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन (ह़दीस)—(ज़ादे सफ़र)
१७—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद सहित, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१८—इनके अतिरिक्त वेद, संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।
१९—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२०—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंका काण्ड — मूल्य १०·००
२१—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत शरीफ़ज़ाद: (आर्यपुत्र) — ,, ४·००
२२—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ४·००
२३—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० १५·००
२४—(तमिळ) तिरुक्कुऱळ् (धर्म खण्ड) —देवनागरी लिपि में ,, ४·००
२५—(मलयाळम्) महाभारत—पौलोम-आस्तीक पर्व ,, ४·००
२६—ज़ादे सफ़र (इस्लामी ह़दीस) ,, १२·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—३५)
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० १६·००

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक